मूल्य 20/-

समाचार विश्लेषण की मासिक पत्रिका

जेट न्यूज

मई 2021

5 राज्यों का चुनाव परिणाम

2 में बदला राज
3 में फिर से ताज

- कई भाजपाई सूरमा फेल, चला ममता का खेल
- तृणमूल फूल, भाजपा हाफ 'लेफ्ट.कांग्रेस साफ'
- 350 करोड़ी फिल्म RRR
- 38 सालों से उलझा, बॉबी हत्याकांड का सिरा
- व्यक्ति विशेष (चार्ल्स शोभराज) शातिरी से दुनिया हैरान

24 JET NEWS.COM

Ranjeet Kumar
CEO & Director Editor Jet News

COMING SOON

Kolkata (W. B.)
Jharkhand, Bihar

संपादक
रंजीत कुमार

विकास शर्मा
एसोसिएट एडिटर

सहायक संपादक
रवि कुमार सिंह

दिल्ली ब्यूरो चीफ
आरके सिंह

पश्चिम बंगाल ब्यूरो चीफ
बिश्वजीत घोष

झारखंड प्रतिनिधि
रिंकेश कुमार

बिहार प्रतिनिधि
मोहित कुमार

छायाकार
बिपिन बिहारी उपाध्याय

पेज डिजाइन
रवि रंजन गुप्ता

सलाहकार
सुभेंदु राय, अधिवक्ता (कोलकाता हाईकोर्ट)
तरुण गुंबर, अधिवक्ता (दिल्ली हाईकोर्ट)

RNI. NO. DELHIN/2015/63409
वर्ष 07 अंक 4 नई दिल्ली
अप्रैल 2021 मूल्य 20 रुपये

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, संपादक रंजीत कुमार ने साई प्रिंटर्स, न्यू अशोक नगर, दिल्ली-110095 से छपवाकर 2042, प्लॉट नं. जीए 33, राजदंगा मेन रोड, कोलकाता 700107 से प्रकाशित
ईमेल- ranjeetsingh0545@gmail.com

दिल्ली कार्यालय
109, एलआईजी फ्लैट, सरिता विहार, नई दिल्ली- 110076

अंदर के पन्नों पर

1.	संपादकीय	-	4-5
2	रक्तबीज से मानवता परास्त	-	6
3	बिहार : कोरोना पर नीतिगत फैसले और विशेषज्ञों की अनदेखी	-	7
4	अंधविश्वास में जकड़ा झारखंड डायन बतायी जा रहीं औरतें	-	8-9
5	वह '14 लाख करोड़' रुपये हम ब्रिटेन से क्यों नहीं मांगते	-	10
6	कम सोने के खतरे	-	11
7	'व्यक्ति विशेष-चार्ल्स शोभराज' शातिरी से दुनिया हैरान	-	12
8	चार्ल्स नाम ही काफी है	-	13-15
9	जान की कीमत पर माइका की निकासी	-	16-17
10	दो में बदला राज तीन में फिर से ताज	-	18-19
11	कई भाजपाई सूरमा फेल चला ममता बनर्जी का खेल	-	20-21
12	तृणमूल फूल, भाजपा हाफ कांग्रेस-सीपीएम साफ	-	22-23
13	पश्चिम बंगाल : इस्लामिक पार्टियों को मुसलमानों का दूर से सलाम	-	24
14	देश में अबतक बनीं 16 महिला मुख्यमंत्री	-	25
15	हरबार बहुमत की सरकार	-	26-27
16	2013 में आया 'नोटा'	-	28-29
17	देश के पहले सेक्सॉलॉजिस्ट प्रखर गांधीवादी एमए अंसारी	-	30-31
18	38 सालों से उलझा बॉबी हत्याकांड का सिरा	-	32-33
19	दो सुपरहीरो सेनानियों की काल्पनिक कहानी	-	34
21	'बाहुबली' से भी महंगी होगी 'आरआरआर'	-	35

संपादकीय

कोरोना की मार आरोप-प्रत्यारोप बेशुमार

रंजीत कुमार

मुख्य संपादक और सीईओ
(जेट न्यूज व 24 जेट न्यूज डॉट कॉम)

कोरोना के कहर की शुरूआत के साथ ही एक साल पहले देश में राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप शुरू हो गये। लेकिन, अब कोरोना का जो कातिल रूप सामने आया है उसमें भी पार्टियां राजनीति से बाज नहीं आ रही हैं। राज्य केंद्र पर तो केंद्र राज्य पर आरोप लगा रहा है। हालांकि जब पहली बार कोरोना का संक्रमण लोगों की जिंदगी और आजीविका के लिए खतरा बना तब राजनीतिक दलों ने इसे अपना एजेंडा आगे बढ़ाने के एक विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया, लेकिन इस मसले पर केंद्र या राज्य सरकार की आलोचना करते समय वे खामोश रहे।

पिछले साल फरवरी 2020 में कांग्रेस नेता राहुल गांधी दो सप्ताह इटली में थे और वह यूरोप में इस स्वास्थ्य संकट के प्रत्यक्षदर्शी बने। मार्च की तीन तारीख को उन्होंने जो ट्वीट किया, वह किसी राजनेता का पहला ऐसा ट्वीट था जिसने संक्रमण के असर के बारे में आगाह किया। हालांकि कांग्रेस नेता अजय माकन ने कहा कि संकट से निपटने में उनकी पार्टी सरकार के साथ है। इस मामले में आयोजित कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में सरकार पर कोई गंभीर हमला नहीं किया गया। वहां केवल कांग्रेस शासित राज्यों के तालमेल पर चर्चा हुई। अभी नवंबर में जब टीके के माध्यम से संक्रमण रोकने के बारे में बातचीत शुरू हुई तो मुख्य विपक्षी दल ने कहा कि इसे लेकर राजनीति नहीं होनी चाहिए। वरिष्ठ कांग्रेस नेता जयराम रमेश ने कहा था कि हम इस बात को लेकर एकदम स्पष्ट हैं कि टीके को लेकर कोई राजनीति नहीं होनी चाहिए।

इस बार कोरोना नये जानलेवा वेब के दौरान चार राज्यों में विधानसभा चुनाव हुए। चुनाव प्रचार अभियान के दौरान भाजपा और कांग्रेस दोनों ही कोविड-19 को चुनावी मुद्दा बनाने से बच रहे हैं। कोविड से सर्वाधिक प्रभावित राज्यों में से एक केरल में रैलियां, सार्वजनिक सभाएं और अपीलें राज्य सरकार के प्रदर्शन के ईद गिर्द केंद्रित हैं। भाजपा ने पिनाराई विजयन सरकार पर विकास के मोर्चे पर कमजोर प्रदर्शन का आरोप लगाया और उसका पूरा ध्यान राज्य सरकार के भ्रष्टाचार पर केंद्रित है। जबकि वाम मोर्चा ने सक्षम प्रशासन, कल्याणकारी योजनाओं और सामाजिक क्षेत्र में किए निवेश पर जोर दिया है। वह भाजपा की 'सांप्रदायिक' राजनीति का विरोध कर रही है।

वाम मोर्चे ने एक बार भी केंद्र सरकार पर यह आरोप नहीं लगाया कि वह टीकों की आपूर्ति में भेदभाव कर रही है। भाजपा ने भी राज्य में टीका आपूर्ति को लेकर खराब योजना का आरोप सरकार पर नहीं लगाया। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) की केंद्रीय समिति के सदस्य और महाराष्ट्र के नेता अशोक धावले स्वीकार करते हैं कि चुनाव में कहीं ज्यादा बड़े मुद्दे हावी हैं, क्योंकि चुनाव उस समय शुरू हुए जब संक्रमण की दर में लगातार गिरावट आ रही थी। परंतु वह कहते हैं कि कोविड संक्रमण की दूसरी लहर के साथ ही केंद्र सरकार के कई निर्णयों पर सवालिया निशान लग गए। उनका कहना है कि महाराष्ट्र स्थित हाफकिन इंस्टीट्यूट टीका विकास में अग्रणी है। यदि केंद्र ने इजाजत दी होती तो यहां बड़े

पैमाने पर टीका उत्पादन किया जा सकता था। राज्य सरकार ने कई सप्ताह पहले केंद्र से समझौता करना चाहा था। मोदी सरकार ने दो सप्ताह पहले ही मंजूरी दी। कल्पना कीजिए कि अगर पहले मंजूरी मिलती तो कितनी जानें बचाई जा सकती थीं। हाल ही में महाराष्ट्र के जनजातीय इलाकों के दौरे से लौटे धावले कहते हैं कि चिंतित करने वाली बात यह है कि संक्रमण अब ग्रामीण इलाकों में फैल गया है। जैसा कि आप जानते हैं ग्रामीण स्वास्थ्य बुनियादी ढांचा बहुत बुरी हालत में है। आज नहीं तो कल लोग सरकारों के कुप्रबंधन के बारे में सवाल करेंगे।'

इन घटनाओं के बीच अब राजनीतिक दलों ने भी अधिक आक्रामक रुख अपनाना शुरू कर दिया है। कांग्रेस ने सोशल मीडिया पर एक अभियान शुरू किया है 'स्पीक अप फॉर वैक्सीस फॉर आल' (यानी सबके लिए टीके की खातिर आवाज उठाएं)। पार्टी की मांग है कि देश के सभी नागरिकों के लिए कोविड-19 टीका मुहैया कराया जाए ताकि उन्हें वायरस से बचाया जा सके। राहुल गांधी ने अपने ट्वीट में कहा है कि कोरोना का टीका देश की जरूरत है और सबको इसके लिए आवाज उठानी चाहिए। उन्होंने कहा कि हर किसी को सुरक्षित जीवन का अधिकार है।

नई दिल्ली स्थित सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च (सीपीआर) के शोधकर्ता राहुल वर्मा जो घरेलू राजनीति पर करीबी नजर रखते हैं, उनका कहना है कि कुछ सप्ताह पहले तक रोज सामने आने वाले नए मामले इतने नहीं थे कि उन्हें राजनीतिक रूप से इस्तेमाल किया जा सके। होली के बाद रोज सामने आने वाले नए मामले तेजी से बढ़? लगे लेकिन तब तक चार राज्यों की कई सीटों पर चुनाव हो चुके थे। बल्कि फरवरी-मार्च में टीके को लेकर लोगों में हिचक भी अधिक थी। बड़ी तादाद में टीके की खुराक बेकार हो रही थीं और कई लोग सवाल कर रहे थे कि आखिर बिना समुचित परीक्षण के कोवैक्सीन को मंजूरी क्यों दी गई? वर्मा कहते हैं कि अब जबकि कोरोना ने गंभीर हमला किया है और मामले एक सप्ताह से भी कम समय में दोगुने हो रहे हैं तो घबराहट का माहौल है। ऐसे में राज्यों और केंद्र के बीच भी खराब नियोजन और क्रियान्वयन को लेकर राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप का दौर शुरू हो गया है। मेरा मानना है कि मौजूदा संकट के लिए दोनों समान रूप से उत्तरदायी हैं। जैसा कि कुछ दिन पहले सीपीआर की अध्यक्ष यामिनी अय्यर ने भी कहा था कि केंद्र और राज्यों को आपसी विश्वास, पारदर्शिता, भरोसा और तालमेल दिखाना चाहिए। यदि हमने आने वाले दिनों में हालात नहीं सुधारे तो भारत कोविड-19 से सर्वाधिक प्रभावित होगा।

इधर मुख्यमंत्रियों के साथ बैठक में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि मसला टीकों की कमी का नहीं है, बल्कि राज्य सरकारों की योजना में कमी है। टीकों की खरीद केंद्रीकृत है। ऐसे में अगर राज्य सरकारें अड़ जाती हैं तो एक बड़ा राजनीतिक विवाद पैदा हो सकता है। उधर केंद्र ने राज्यों को लॉकडाउन या अन्य कार्रवाईयों को अधिकार दे रखा है तो, राज्य खुद कोई निर्णय लेने में डर रहे हैं। यही वजह है कि महाराष्ट्र, झारखंड, केरल आदि राज्य देर तक कोई निर्णय लेने में दुविधा में रहे। और, तब कोई निर्णय लिया गया तो देश के नाम संबोधन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कह दिया कि संपूर्ण लॉकडाउन अंतिम विकल्प होना चाहिए।

रक्तबीज कोरोना मानवता परास्त

कोरोना की शुरूआत में जब पूरे विश्व को आशंका थी कि अपने सीमित संसाधनों और विशाल जनसंख्या के कारण कोरोना भारत में त्राहिमाम मचा देगा, तब हमने अपनी सूझ बूझ से महामारी को अपने यहां काबू में कर संपूर्ण विश्व को चौंका दिया था। रातों रात ट्रेनों तक में अस्थाई कोविड अस्पतालों, और.जांच लैब का निर्माण करने से लेकर पीपीई किट, वेंटिलेटर, सैनिटाइजर, और मास्क का निर्यात करने तक भारत ने कोविड से लड़ाई जीतने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि भारत इतने पर नहीं रूका। भारत ने कोरोना के साथ इस लड़ाई को अंजाम तक पहुंचाने के लिए वैक्सीन का निर्माण भी कर लिया था। लगने लगा था कि कोरोना से इस लड़ाई में हम बहुत आगे निकल आए हैं लेकिन फिर अचानक से क्या हुआ कि परिस्थितियां हमारे हाथ से फिसलती गईं और हम हार गए। फिलहाल तो हालत ऐसी है कि अब लग रहा है कि यहां मानवता भी परास्त हो रही है। कालाबाजारी करने वालों के लिए तो जैसे कोरोना काल आपदा में अवसर बनकर आया। कुल मिला कर जिसे मौका मिला सामने वाले की मजबूरी का फायदा सबने उठाया। क्या ये वो ही देश है जो कोरोना की पहली लहर में एकजुट था? क्या ये वो ही देश है जिसमें पिछली बार करोड़ों हाथ लोगों की मदद के लिए आगे आए थे? और जब ऐसे देश में प्राइवेट अस्पतालों में कोविड के इलाज के बिल जो लाखों में बनता है, एक परिवार को अपनी जीवन भर की कमाई और किसी अपने की जिंदगी में से एक को चुनने के लिए विवश होना पड़ता हैं तो उस समय वक्त भी ठहर जाता है।

बॉम्बे हाई कोर्ट ने महाराष्ट्र सरकार से महाराष्ट्र में कोरोना के हालात पर कहा है कि 'इस समाज का हिस्सा होने पर हम शर्मिंदा है।' दूसरी ओर दिल्ली हाई कोर्ट ने बढ़ते रिकॉर्ड मामलों को देखते हुए कोरोना को सुनामी बताया। वैसे महाराष्ट्र या दिल्ली ही नहीं पूरा देश कोरोना से जूझ रहा है।

हालांकि कोरोना की जिस लड़ाई में पांच महीने पहले हमें लग रहा था कि हम जीत गए, वह अब जाकर भ्रम साबित हुआ है। कोरोना की शुरूआत में जब पूरे विश्व को आशंका थी कि अपने सीमित संसाधनों और विशाल जनसंख्या के कारण कोरोना भारत में त्राहिमाम मचा देगा, तब हमने अपनी सूझ बूझ से महामारी को अपने यहां काबू में कर संपूर्ण विश्व को चौंका दिया था। रातों रात ट्रेनों तक में अस्थाई कोविड अस्पतालों, और.जांच लैब का निर्माण करने से लेकर पीपीई किट, वेंटिलेटर, सैनिटाइजर, और मास्क का निर्यात करने तक भारत ने कोविड से लड़ाई जीतने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि भारत इतने पर नहीं रूका। भारत ने कोरोना के साथ इस लड़ाई को अंजाम तक पहुंचाने के लिए वैक्सीन का निर्माण भी कर लिया था। लगने लगा था कि कोरोना से इस लड़ाई में हम बहुत आगे निकल आए हैं लेकिन फिर अचानक से क्या हुआ कि परिस्थितियां हमारे हाथ से फिसलती गईं और हम हार गए। फिलहाल तो हालत ऐसी है कि अब लग रहा है कि यहां मानवता भी परास्त हो रही है। दुर्भाग्य यह है कि बात प्रशासन और सरकारों के एक वायरस के आगे बेबस होने तक ही सीमित नहीं है, ये जमाखोरों और काला बाजारी करने वालों के आगे भी बेबस नजर आ रही हैं। देश के जो वर्तमान हालात हैं उनमें केवल स्वास्थ्य व्यवस्थाऐं ही कठघरे में नहीं हैं बल्कि प्रशासन और नेता भी कठघरे में है। इसे क्या कहिएगा कि जब मध्यप्रदेश के इंदौर में कोरोना के मरीज ऑक्सीजन की कमी से अस्पताल में दम तोड़ रहे थे तो मानवता को ताक पर रखकर हमारे नेताओं में 30 टन ऑक्सिजन लाने वाले टैंकर के साथ फोटो खिंचवाने की होड़ लग जाती है। जब इंदौर शहर एक एक सांस के लिए मोहताज था, जब एक क्षण की सांस भी मौत को जिंदगी से दूर धकेलने के लिए बहुत थी तब इन नेताओं के लिए तीन घंटे का फोटो सेशन भी कम पड़ रहा था। त्राहिमाम के इस काल में संवेदनहीनता की पराकाष्ठा यहीं तक सीमित नहीं रही। कभी सरकारी अस्पताल से वैक्सीन चोरी होने की खबर आई तो कभी कोरोना के इलाज में प्रयुक्त होने वाली दवाई रेमडेविसिर चोरी होने की। कभी आम लोगों द्वारा ऑक्सीजन सिलिंडर लूटने की खबरें आईं तो कभी प्रशासन और सरकार की नाक के नीचे 750 से 1000 रुपए का इंजेक्शन 18000 तक में बिका। पेरासिटामोल जैसी गोली भी इस महामारी के दौर में 100 रुपए में बेची गईं। हालात ये हो गए कि विटामिन सी की गोली से लेकर नींबू तक के दाम थोक में वसूले गये।

आज देश जिस स्थिति से गुजर रहा है वो कम से कम कोरोना की दूसरी लहर में तो स्वीकार नहीं हो सकती। हां अगर कोरोना की पहली लहर में यह सब होता तो एकबार को समझा जा सकता था कि देश इन अप्रत्याशित परिस्थितियों के लिए तैयार ही नहीं था। लेकिन आज? कहां गया वो इंफ्रास्ट्रक्चर जो कोरोना की पहली लहर में खड़ा किया गया था? कहां गए वो कोविड के अस्पताल? कहां गए वो बड़े बड़े दावे? जब वैज्ञानिकों ने पहले से ही कोविड की दूसरी लहर की चेतावनी दे दी थी तो यह लापरवाही कैसे हो गई? आज अचानक देश बेड और ऑक्सीजन की कमी का सामना क्यों कर रहा है? वो देश जिसका दुनिया भर में फार्मेसी के क्षेत्र में 60 प्रतिशत से अधिक की हिस्सेदारी है वो कोरोना में इस्तेमाल होने वाली दवाओं की किल्लत से क्यों जूझ रहा है? अधिकांश राज्य सरकारें और प्रशासन एक वायरस के आगे बौने क्यों दिखाई पड़ रहे है?

आरके सिंह

कालाबाजारी करने वालों के लिए तो जैसे कोरोना काल आपदा में अवसर बनकर आया। कुल मिला कर जिसे मौका मिला सामने वाले की मजबूरी का फायदा सबने उठाया। क्या ये वो ही देश है जो कोरोना की पहली लहर में एकजुट था? क्या ये वो ही देश है जिसमें पिछली बार करोड़ों हाथ लोगों की मदद के लिए आगे आए थे? और जब ऐसे देश में प्राइवेट अस्पतालों में कोविड के इलाज के बिल जो लाखों में बनता है, एक परिवार को अपनी जीवन भर की कमाई और किसी अपने की जिंदगी में से एक को चुनने के लिए विवश होना पड़ता हैं तो उस समय वक्त भी ठहर जाता है। क्योंकि एक तरफ भावनाएं उफान पर होती हैं तो दूसरी तरफ वो संभवतः दम तोड़ चुकी होती हैं। और ऐसे संवेदनशील दौर में कुछ घटनाएं ऐसी भी सामने आती हैं जो भीतर तक झंझोर जाती हैं।

नासिक के एक अस्पताल में जब ऑक्सीजन टैंकर लीक होने से ऑक्सीजन की सप्लाई में रुकावट आई और ऑक्सीजन सपोर्ट वाले मरीजों की हालत बिगड़ने लगी तो जीवित मरीजों के परिजनों में दम तोड़ चुके मरीजों के ऑक्सीजन सिलेंडर लूटने की होड़ लग गई। कुछ मरीजों के परिजन मर चुके लोगों के शरीर से ऑक्सीजन सिलेंडर निकाल कर अपनों के शरीर में लगा रहे थे तो कुछ मरीज खुद ही लगाने की कोशिश कर रहे थे। जिंदगी और मौत के बीच का फासला मिटाने के लिए जब इंसानियत का कत्ल करना इंसान की मजबूरी बन जाये तो दोष किसे दें? स्वास्थ्य सेवाओं को? परिस्थितियों को? सरकार को? प्रशासन को? या फिर कोरोना काल को? दअसल इस कोरोना काल ने सिर्फ हमारे देश की स्वास्थ्य सेवाओं की सच्चाई को ही उजागर नहीं किया है, बल्कि दम तोड़ती मानवीय संवेदनाओं का सत्य भी समाज के सामने बेनकाब कर दिया है। समय आ गया है कि हम इस काल से सबक लें। एक व्यक्ति के तौर पर ही नहीं बल्कि एक समाज के तौर पर एकजुट हो कर मानवता की रक्षा के लिए आगे आएं। आखिर यही तो एक सभ्य समाज की पहचान होती है। चंद मुट्ठी भर लोगों का लालच मानवीय मूल्यों पर हावी नहीं हो सकता। जिस प्रकार पिछली बार देश भर की स्वयंसेवी संस्थाओं से लेकर गली मोहल्लों और गांवों तक में हर व्यक्ति एक योद्धा बना हुआ था इस बार भी वो ही जज्बा लाना होगा और मानवता को आगे आना होगा संवेदनाओं को जीवित रखने के लिए। अभी हम थक नहीं सकते रुक नहीं सकते अभी हमें एक होकर काफी लंबा सफर तय करना है तभी हम सिर्फ कोरोना से ही नहीं जीतेंगे बल्कि मानवता की भी रक्षा कर सकेंगे।

बिहार : कोरोना पर नीतिगत फैसले और विशेषज्ञों की अनदेखी

मोहित कुमार

कोरोना महामारी को राजनीतिक चश्मे से देखे जाने की वजह से हालात खराब हुए हैं। लोगों में गुस्सा भड़क जाएगा, इसलिए सख्ती मत करो। समीकरण बिगड़ जाएगा तो क्या होगा? अगर सख्ती की तो विरोधी दल को मुद्दा मिल जाएगा। वगैरह, वगैरह। माना जा रहा है कि इन्ही सब अंदेशों की वजह से वाजिब फैसला नहीं हो पा रहा है। कोरोना से निबटने में नीतीश सरकार का स्वास्थ्य विभाग नाकाम सबित हुआ है। छह दिन पहले ही कोरोना को लेकर पटना हाईकोर्ट ने स्वास्थ्य विभाग के प्रधान सचिव को कहा था, सब कुछ अच्छा है, ये तस्वीर मत दिखाइए। कोरोना संक्रमण से बचाव के लिए लॉकडाउन का फैसला, क्या राजनीतिक मसला है? क्या राजनीतिज्ञ तय करेंगे कि लॉकडाउन लगेगा या नहीं? या फिर महामारी से जूझने वाले विशेषज्ञों इस पर अपनी अंतिम राय रखेंगे? राजनीतिज्ञ नफा-नुकसान के आधार पर फैसला लेंगे क्योंकि उनका अंतिम लक्ष्य चुनाव होता है। जबकि विशेषज्ञ बीमारी को ध्यान में रखकर फैसला लेंगे क्यों उनका लक्ष्य जिंदगी को बचाना है। अब बिहार में कोरोना पर राजानीति शुरू है। बिहार में कोरोना का संक्रमण भयावह रूप से बढ़ रहा है। लेकिन इस महामारी से निबटने के तरीके पर सत्तारुढ़ भाजपा और जदयू में मतभेद हो गया है। भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष डॉ. संजय जायसवाल पेशे से डॉक्टर हैं इसलिए उन्होंने बिहार में नाइट कर्फ्यू के औचित्य पर सवाल उठाया है। उनकी राय में नाइट कर्फ्यू संक्रमण रोकने के लिए उपयुक्त उपाय नहीं है। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के इस फैसले पर भाजपा ने सवाल उठाया तो जदयू को ये बात अखर गयी। फिर दोनों दलों में राजनीति शुरू हो गयी। सर्वदलीय बैठक में भी किसी दल ने लॉकडाउन का समर्थन नहीं किया। तो क्या बिहार के महाराष्ट्र बनने का इंतजार किया जा रहा है? ये तो हद है। जान की कीमत पर राजनीति हो रही है। पूर्व मंत्री और सत्तारुढ़ जदयू के विधायक मेवालाल चौधरी की अकाल मौत, बिहार की राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था पर करारा तमाचा है।

अधिक भयावह है दूसरी लहर

बिहार में अब एक दिन में 12 हजार से अधिक संक्रमित मिलने लगे हैं। हर जिले में औसतन 65 केस मिल रहे हैं। राजधानी पटना की स्थिति सबसे खराब है। पिछले साल 20 अप्रैल की तुलना में इस बार पटना में 33 फीसदी अधिक संक्रमण है। पिछले साल कम संक्रमण था तब 15 अप्रैल से 3 मई (2020) तक लॉकडाउन लागू था। अभी कोरोना से बचाव के लिए बिहार में केवल नाइट कर्फ्यू लागू है। क्या नाइट कर्फ्यू संक्रमण रोकने के लिए उचित उपाय है ? इलाहाबाद हाईकोर्ट कह चुका है कि नाइट कर्फ्यू आंखों में धूल झोंकने के समान है। क्या जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए नाइट कर्फ्यू लागू किया गया है? जब भीड़-भाड़ दिन में रहती है तो रात 9 बजे के बाद सख्ती करने का क्या मतलब है? पटना की सब्जी मंडियों, गल्लों की दुकानों में जो भारी भीड़ जुट रही वह भयावह है। अधिकांश जगहों पर सोशल डिस्टेंसिंग का पालन नहीं हो रहा।

पिछली बार तो सख्ती थी। इस बार तो कोई देखने वाला ही नहीं है। सब्जी मंडी रोज खुल रही है और यहां रेलमरेल है। अधिकतर दुकानदार मास्क भी नहीं लगाते। बस स्टैंड में तो भीड़ का आलम हैरान कर देने वाला है। पटना की मुख्य सड़कों पर और वीपीआइपी मुहल्लों में कभी-कभार चेकिंग होती भी है। लेकिन, अधिकांश छोटे मुहल्लों की स्थिति कोरोना को न्योता देने वाली है। जनसाधारण में भी कोरोना से बचाव को लेकर कोई रुचि नहीं है।

अगर बिहार सरकार लॉकडाउन नहीं लगा सकती तो क्या वह बेपरवाह भीड़ को नियंत्रित भी नहीं कर सकती? अगर लोग स्वेच्छा से सोशल डिस्टेंसिंग का पालन नहीं करें तो क्या करना चाहिए? यूं ही मरने-मारने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए? आज जब कोरोना से पूरे बिहार में हाहाकार मचा है तो सरकारी इंतजामों की पोल खुल गयी है। अस्पताल में बेड नहीं है। अगर बेड है तो ऑक्सीजन का सिलिंडर नहीं है। पटना में जिस तेजी से संक्रमण बढ़ रहा है उसके हिसाब से इंतजाम नहीं हैं। निजी अस्पतालों का कहना है कि मांग के हिसाब से सिलिंडर नहीं मिल रहे हैं। एक अनुमान के मुताबिक अभी हर रोज 11 हजार सिलिंडर की जरूरत है तो मिल रहे हैं करीब छह हजार के आसापास। अब सरकार ने हर अस्पतालों में मजिस्ट्रेट तैनात कर सिलिंडरों की निगरानी की व्यवस्था शुरू की है। लेकिन सरकार के दावों के उलट अभी भी लोग आक्सीजन और बेड के लिए इस अस्पताल से उस अस्पताल में भटक रहे हैं। भीड़ नियंत्रित नहीं कर पाने की कीमत आखिर कौन चुका रहा है? जब आपके पास संसाधन कम हों तो हालात को काबू में रखना जरूरी है।

कोरोना महामारी को राजनीतिक चश्मे से देखे जाने की वजह से हालात खराब हुए हैं। लोगों में गुस्सा भड़क जाएगा, इसलिए सख्ती मत करो। समीकरण बिगड़ जाएगा तो क्या होगा? अगर सख्ती की तो विरोधी दल को मुद्दा मिल जाएगा। वगैरह, वगैरह। माना जा रहा है कि इन्ही सब अंदेशों की वजह से वाजिब फैसला नहीं हो पा रहा है। कोरोना से निबटने में नीतीश सरकार का स्वास्थ्य विभाग नाकाम सबित हुआ है। छह दिन पहले ही कोरोना को लेकर पटना हाईकोर्ट ने स्वास्थ्य विभाग के प्रधान सचिव को कहा था, सब कुछ अच्छा है, ये तस्वीर मत दिखाइए। अगर सब कुछ अच्छा होता तो कोर्ट को इसमें हस्तक्षेप करने की जरूरत ही नहीं होती। कोर्ट ने यहां तक कहा था, कोरोना से निबटने की तैयारी के सरकारी आंकड़े अपने पास रखिए, हमें इन पर भरोसा नहीं। कोर्ट की इन टिप्पणियों से बिहार सरकार के कामकाज का अंदाजा लगाया जा सकता है।

अंधविश्वास में जकड़ा झारखंड

डायन बतायी जा रहीं औरतें

पुलिसिया रिकॉर्ड के अनुसार पिछले सात वर्ष यानी 2015-21 के आंकड़े बताते हैं कि झारखंड में 4691 मामले दर्ज किए गए। इसमें हत्या से संबंधित 314 मामले दर्ज हैं। डायन प्रथा प्रतिषेध अधिनियम के तहत 2015 में 818, 2016 में 688, 2017 में 668, 2018 में 567, 2019 में 978 और 2020 में 837 मामले दर्ज किए गए हैं। वर्ष 2020 में डायन बिसाही के नाम पर 30 लोगों की हत्या कर दी गई। वर्ष 2021 में अबतक डायन हत्या और डायन बिसाही में हत्या और 131 मामले डायन अधिनियम से संबंधित दर्ज किये गए हैं।

झारखंड में अंधविश्वास के नाम पर डायन बिसाही का आरोप लगाकर महिलाओं पर अत्याचार और हत्या कर देने का मामला लगातार सामने आता रहता है। झारखंड पुलिस के आंकड़े यह बताते हैं कि राज्य में किसी न किसी थाने में हर हफ्ते डायन बिसाही के एक-दो मामले सामने आते हैं। इसमें ज्यादातर महिलाएं ही प्रताड़ित होती हैं। पुलिसिया रिकॉर्ड के अनुसार पिछले सात वर्ष यानी 2015-21 के आंकड़े बताते हैं कि झारखंड में 4691 मामले दर्ज किए गए। इसमें हत्या से संबंधित 314 मामले दर्ज हैं। डायन प्रथा प्रतिषेध अधिनियम के तहत 2015 में 818, 2016 में 688, 2017 में 668, 2018 में 567, 2019 में 978 और 2020 में 837 मामले दर्ज किए गए हैं। वर्ष 2020 में डायन बिसाही के नाम पर 30 लोगों की हत्या कर दी गई। वर्ष 2021 में अबतक डायन हत्या और डायन

अधिनियम से संबंधित 135 मामले अब तक सामने आए हैं। इनमें चार डायन बिसाही में हत्या और 131 मामले डायन अधिनियम से संबंधित दर्ज किये गए हैं। अशिक्षा और अंधविश्वास की वजह से डायन बिसाही की घटनाएं घटित होती हैं। झारखंड के ग्रामीण इलाकों में रहने वाले ज्यादातर लोग किसी बीमारी के फैलने की स्थिति में पहले ओझा के पास जाते हैं। इसके बाद जब उनसे ठीक नहीं होते तब झोलाछाप डॉक्टरों के पास जाते हैं। ओझा और झोलाछाप डॉक्टरों से कुछ नहीं हो पाता तब वह आस पड़ोस की किसी महिला को इसके

रिंकेश कुमार

लिए जिम्मेदार ठहरा देते हैं। मौजूदा समय में गांवों में स्वास्थ्य सुविधाएं बेहतर नहीं हैं और ऐसी स्थिति में डॉक्टर और ओझा ही लोगों का सहारा है। ओझा की ओर से डायन करार दी गई महिला का उत्पीड़न शुरू होता है और कई बार मामले में लोग जान से भी मार देते हैं। लोग पुरानी धारना को मानते हुए किसी बच्चे को बुखार आने, पेट में दर्द होने, खाना न खाने, रात में रोने, नींद न आने, गांव में फसल कम होने, पानी कम गिरने या अधिक गिरने, जानवरो की तबीयत खराब होने पर यह मान लेते हैं कि किसी की नजर लगी है। मामले को लेकर सीआईडी के एडीजी अनिल पाल्टा ने बताया कि डायन हत्या के पीछे आर्थिक झगड़े, अंधविश्वास और दूसरी निजी और सामाजिक संघर्ष प्रमुख कारण है। अधिकतर आदिवासी समुदाय में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में जमीन पर ज्यादा अधिकार प्राप्त होते हैं। इस संपत्ति पर अधिकार जमाने के लिए उन्हें डायन साबित करने की कवायद शुरू की जाती है। खासकर उन महिलाओं को निशाने पर रखा जाता है जिनके परिवार में कोई नहीं होता। ग्रामीण इलाकों में संपत्ति हड़पने या आपसी रंजिश के लिए भी इस कुप्रथा की आड़ ली जाती है। इसे रोकने के लिए पुलिस लगातार जागरूकता अभियान चलाती है। इस मामले में संलिप्त व्यक्ति को अविलंब गिरफ्तार भी किया जाता है।

ये हैं प्रमुख घटनाएं

गुमला के कामडारा थाना क्षेत्र के बुरुहातु गांव में 22 फरवरी की रात निकोदिन टोपनो के पूरे परिवार की हत्या डायन बिसाही की आशंका के आधार पर कर दी गई थी। हत्या के आरोप में गुमला पुलिस की तरफ से गांव के ही 8 लोगों को गिरफ्तार किया गया था। राजधानी रांची में बीते 28 मार्च को लापुंग के लोधमा गांव में डायन बिसाही का आरोप लगाकर सुको उराइन की पत्थर से कूच कर हत्या कर दी गई थी। मामले में पुलिस ने 30 मार्च को संदीप बाड़ा, पतरस उरांव और गेंदरा बाड़ा को गिरफ्तार किया था। तीनों में घटना में अपनी संलिप्तता स्वीकार की थी। गिरफ्तार आरोपितों की ओर से बताया गया कि दो साल पहले आरोपी संदीप बाड़ा के बच्चे की मौत हो गई थी। उस वक्त संदीप और उसके परिजनों ने महिला पर डायन होने का शक जताया था। हालांकि उस वक्त संदीप ने महिला के साथ कुछ नहीं किया। एक सप्ताह पहले महिला आरोपी संदीप के घर के आसपास मंडरा रही थी। परिवार के सदस्यों की मौत होने के संदेह में आरोपियों ने 28 मार्च को सुको को सोते वक्त पत्थर से कूच कर हत्या कर दी। रांची के बेड़ो, नामकुम, लापुंग, दशम, अनगड़ा और तुपुदाना ऐसे इलाके हैं जहां डायन के नाम पर महिलाओं को प्रताड़ित करने की खबरें सामने आती हैं। पुलिस की ओर से डायन बिसाही के खिलाफ बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार कर ग्रामीणों के बीच जागरूकता फैलाई जाती है। बावजूद इसके गांधारी का मामला सामने आता है। सभी थाना के प्रभारी गांव के मुखिया के साथ लोगों के बीच डायन बिसाही को लेकर हमेशा बैठक करते हैं। इसके अलावा झारखंड के सभी ग्रामीण थानों में चौकीदार के द्वारा भी डायन बिसाही खिलाफ प्रचार-प्रसार किया जाता है। लगातार जिले के एसपी इस संबंध में सभी थाना प्रभारियों को डायन बिसाही को रोकने के लिए ग्रामीणों के साथ बैठक करने का भी निर्देश देते हैं। सभी जिलों में नुक्कड़ नाटक के माध्यम से भी लोगों को डायन बिसाही के खिलाफ जागरूक किया जाता है। सरकार भी अपने स्तर से लोगों को अवेयर करने का काम करती है। कुछ लोगों का कहना है कि डायन बिसाही को रोकने के लिए लोगों को शिक्षित करना और स्वास्थ्य सुविधाएं सहित अन्य सुविधाएं ग्रामीण क्षेत्रों में मिले इसकी व्यवस्था करना बेहद जरूरी है।

वह '14 लाख करोड़' रुपये हम ब्रिटेन से क्यों नहीं मांगते

विकास शर्मा

वह 14 लाख करोड़ रुपये हम ब्रिटेन से क्यों नहीं मांगते जो विश्व युद्ध के समय उसने हमसे लिया था! कुछ समय पहले भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (एएसआई) ने बताया कि कोहिनूर हीरे को लाहौर (उस वक्त पंजाब रियासत की राजधानी) के महाराजा दिलीप सिंह ने ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को समर्पित किया था। उसके मुताबिक 1849 में लॉर्ड डलहौजी और लाहौर के महाराजा दिलीप सिंह के बीच एक संधि हुई थी। इसे लाहौर संधि कहा जाता है। इसी संधि के तहत लाहौर के महाराजा ने महारानी विक्टोरिया को कोहिनूर हीरा समर्पित किया था। इससे पहले केंद्र सरकार ने ऐसे ही एक मामले में सुप्रीम कोर्ट में कहा था कि पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के वंशजों ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को कोहिनूर उपहार में दिया था।

सरकार के मुताबिक उसे न तो जबरन छीना गया था और न ही चुराया गया था। इस बेशकीमती हीरे को भारत लाने की चर्चा और उसे लेकर कवायदें समय-समय पर चलती ही रहती हैं। एक बड़ा वर्ग मानता है कि कोहिनूर भारत की विरासत है और ब्रिटेन को इसे वापस करना चाहिए। लेकिन कोहिनूर कर्ज के उस विशाल आंकड़े के आगे कुछ नहीं जो ब्रिटेन ने भारत को वापस नहीं किया। साल 2015 में दूसरे विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय की 70वीं जयंती मनाई गई थी। अमेरिका जैसे कई देशों के बहिष्कार के बीच मॉस्को में हुए इस आयोजन में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी भी मौजूद थे। रूस पर इस युद्ध की मार सबसे ज्यादा पड़ी थी। दुनिया भर में चली इस लड़ाई में कुल मिला कर जो छह करोड़ लोग मरे थे, उनमें से दो करोड़ तत्कालीन सोवियत संघ के सैनिक व निवासी थे।

दूसरे विश्व युद्ध की मार भारत पर भी कम नहीं पड़ी थी। आंकड़े बताते हैं कि करीब 25 लाख भारतीय सैनिकों ने इसमें हिस्सा लिया था। लड़ाई के दौरान इनमें 24 हजार से भी ज्यादा मारे गए। घायल या लापता होने वालों की संख्या इससे करीब तिगुनी थी। लड़ाई का खर्च गुलाम भारत के करदाताओं ने भी उठाया। आज के हिसाब से देखा जाए तो भारत ने ब्रितानी हुकूमत को जो रकम लड़ाई के लिए दी थी, वह आज 150 अरब डॉलर (करीब नौ लाख 75 हजार करोड़ रुपये) से कम नहीं होगी। लेकिन न तो भारत ने कभी उससे यह उधार वापस मांगा, न ही ब्रिटेन ने कभी इसकी कोई चर्चा की। जर्मनी के तानाशाह एडोल्फ हिटलर ने एक सितंबर 1939 की सुबह पौने पांच बजे पोलैंड पर अकारण हमला कर जब द्वितीय विश्वयुद्ध छेड़ा था, तब भारत अंग्रेजों का उपनिवेश था। भारत का इस युद्ध से कुछ लेना-देना नहीं था। तब भी उसे बहुत कुछ देना पड़ गया। दो ही दिन बाद तीन सितंबर को दिन में 11 बजे ब्रिटेन ने और पांच बजे फ्रांस ने भी जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। दोनों देश पोलैंड की स्वाधीनता के संरक्षक थे। इसी दिन भारत की ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार की ओर से वाइसरॉय लॉर्ड लिनलिथगो ने कांग्रेस पार्टी और मुस्लिम लीग के नेताओं और देश की जनता को बताया कि भारत भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की स्थिति में है, उसे ब्रिटेन के हाथ मजबूत करने होंगे।

1914 से 1918 तक चले प्रथम विश्वयुद्ध की तरह दूसरे विश्वयुद्ध के समय भी भारतीय सैनिकों की संख्या सभी मित्र राष्ट्रों के सैनिकों के बीच सबसे अधिक थी। इस बार भी इन सैनिकों के खाने-पीने, अस्त्र- शस्त्र और लड़ने का सारा खर्च गुलाम भारत के करदाताओं को उठाना पड़ा। उस समय ब्रिटिश मुद्रा पाउंड-स्टर्लिंग के कुल भंडार का एक-तिहाई भारत के पास हुआ करता था। ब्रिटेन की सरकार ने उसमें से जो धन निकाला या उधार लिया, उसे कभी नहीं लौटाया। स्वतंत्र भारत की सरकारें इतनी दानवीर निकलीं कि उन्होंने इस पैसे का न कभी हिसाब-किताब मांगा और न ही कभी इसे लौटाने की बात की। ब्रिटिश अखबार द टेलीग्राफ में छपी एक रिपोर्ट बताती है कि युद्ध का अंत होते-होते ब्रिटेन पर कुल तीन अरब पाउंड-स्टर्लिंग का जो कर्ज चढ़ गया था उसमें 1.24 अरब भारत से आया था। आज के हिसाब से देखा जाए तो यह आंकड़ा 150 अरब पाउंड-स्टर्लिंग यानी 14 लाख करोड़ से कम नहीं होगा।

जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गांधी ने भारत पर थोपी गई इस एकतरफा युद्ध-घोषणा का जोरदार विरोध किया। उनका कहना था कि ब्रिटेन यदि भारतीय जनता का समर्थन चाहता है तो उसे पहले बताना होगा कि युद्ध खत्म होने के बाद भारत के प्रति उसके 'लक्ष्य और आदर्श' क्या होंगे। दरअसल ब्रिटिश सरकार प्रथम विश्व युद्ध के समय भी स्वतंत्रता का प्रलोभन देकर भारत को युद्ध में घसीट चुकी थी। कांग्रेस के नेता फिर किसी झांसे में नहीं आना चाहते थे। ब्रिटेन का साथ नहीं देने की नेहरू-गांधी की नीति और 1942 में महात्मा गांधी के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन के बावजूद भारत के 25 लाख से अधिक लोग ब्रिटिश सेना में भर्ती होकर द्वितीय विश्व युद्ध के एशियाई, यूरोपीय और अफ्रीकी मोर्चों पर लड़े।

30 अप्रैल 1945 को हिटलर द्वारा बर्लिन के अपने बंकर में आत्महत्या कर लेने के एक ही सप्ताह बाद आठ मई को जर्मन सेना 'वेयरमाख़्त' के तीन उच्च कमांडरों ने बिना शर्त आत्मसमर्पण के दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके साथ ही यूरोप में युद्ध का अंत हो गया। लेकिन एशिया में लड़ाई तब तक चलती रही जब तक छह अगस्त 1945 को हिरोशिमा और नौ अगस्त को नागासाकी पर गिरे अमेरिकी परमाणु बमों ने जापान को तीन सितंबर 1945 के दिन विधिवत आत्मसमर्पण करने पर विवश नहीं कर दिया। यह युद्ध तब तक 24,348 भारतीय सैनिकों के प्राणों की भी बलि ले चुका था। 64,354 घायल हुए और 11,754 का कोई पता नहीं चला। जापान में रासबिहारी बोस, जर्मनी में नेताजी सुभाषचंद्र बोस और मलाया-सिंगापुर में कैप्टन मोहन सिंह ने ब्रिटिश सेना से पलायन करने वालों या जापानियों और जर्मनों द्वारा युद्धबंदी बनाये गये भारतीय सैनिकों को मिला कर लगभग 40 हजार सैनिकों की एक 'आजाद हिंद फौज' बनाई थी। यह फौज ही नेताजी बोस के नेतृत्व में अंग्रेजों से लड़ते हुए भारत की पूर्वी सीमा तक पहुंच गयी थी। ये फौजी तब तक लड़ते रहे, जब तक जापान ने अमेरिकी परमाणु बमों की मार से हार कर घुटने नहीं टेक दिये।

इस प्रसंग में इस समय कर्ज के बोझ से कराह रहे यूनान (ग्रीस) का उदाहरण लिया जा सकता है। उसका जर्मनी के साथ एक प्रमुख झगड़ा यह है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जर्मनी ने यूनान पर कब्जा करके वहां के राष्ट्रीय बैंक से जबरदस्ती जो उधार लिया था, उसे आज तक लौटाया नहीं। इस उधार और युद्ध के कारण हुए नुकसान को यूनानी वित्त मंत्रालय आज 279 अरब यूरो के बराबर बताता है। जबकि यूनान पर आज जो बाहरी कर्ज है, वह कुल मिलाकर 240 अरब यूरो के बराबर है। दूसरे शब्दों में, जर्मनी यदि वह क्षतिपूर्ति कर दे तो यूनान अपने सारे ऋणभार से मुक्त हो जाये। भारत में विदेशी बैंकों में रखे काले धन को लेकर चौतरफा गुहार तो है, पर दूसरे विश्वयुद्ध में ब्रिटेन ने गुलाम भारत से जो उधार लिया उसे लौटाने की बात कभी किसी ने नहीं की।

कम सोने के खतरे

सुतापा साहा

ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने रिसर्च के बाद रिपोर्ट पब्लिश की है कि कम सोने वाले लोग मानसिक तौर पर बीमार हो सकते हैं और पागल होने की संभावना बढ़ जाती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि 6 घंटे से कम सोने वाले लोग मानसिक विक्षिप्त हो सकते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक 6 घंटे से कम सोने वाले लोगों में डिमेंशिया नाम की बीमारी हो सकती है। डिमेंशिया एक मस्तिष्क रोग है, जिसके अंतर्गत एक मरीज कई तरह की मानसिक बीमारियों से परेशान हो जाता है।

कम सोने वाले लोग अब ज्यादा देर सोना शुरू कर दें, क्योंकि आपको अगर स्वस्थ रहना है तो सोना भी जरूरी है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने रिसर्च के बाद रिपोर्ट पब्लिश की है कि कम सोने वाले लोग मानसिक तौर पर बीमार हो सकते हैं और पागल होने की संभावना बढ़ जाती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि 6 घंटे से कम सोने वाले लोग मानसिक विक्षिप्त हो सकते हैं। 50 साल की उम्र से ज्यादा उम्रवाले लोगों के लिए 6 घंटे से कम सोना खतरनाक साबित हो सकता है और उन्हें पागल बना सकता है।

ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने 35 सालों तक करीब 8 हजार से ज्यादा ब्रिटिश नागरिकों पर रिसर्च करने के बाद ये निष्कर्ष निकाला है कि कम सोने वाले लोगों के पागल होने की आशंका ज्यादा है। रिसर्च जारी करने वाले वैज्ञानिकों ने कहा कि 35 सालों तक 8 हजार लोगों पर रिसर्च किया गया और आंकड़ों को कैलकुलेट करने के बाद पाया गया है कि 6 घंटे से कम सोने वाले लोगों के पागल होने का खतरा ज्यादा है। हालांकि, वैज्ञानिकों ने कहा कि वो इसके पीछे की वजह को तलाशने में नाकामयाब रहे हैं। पिछले महीने ब्रिटिश मेडिकल जर्नल नेचर कम्यूनिकेशन में प्रकाशित रिपोर्ट के मुताबिक 6 घंटे से कम सोने वाले लोगों में डिमेंशिया नाम की बीमारी हो सकती है। डिमेंशिया एक मस्तिष्क रोग है, जिसके अंतर्गत एक मरीज कई तरह की मानसिक बीमारियों से परेशान हो जाता है। जिनमें भूलने की बीमारी, अल्जाइमर, बोलने की क्षमता में कमी होना, चिड़चिड़ापन, फैसला करने में गलती, व्यक्तित्व में बदलाव समेत कई तरह की बीमारी शामिल है। खासकर 50 साल या 60 साल की उम्र वाले लोग अगर 6 घंटे से कम सोते हैं तो उनमें डिमेंशिया होने का खतरा काफी ज्यादा बढ़ जाता है। लिहाजा, ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने कहा है कि "वैसे तो आपकी उम्र कुछ भी हो, आपको कम से कम 7 घंटे निश्चित तौर पर सोना चाहिए लेकिन अगर आप 50 साल से ज्यादा उम्र के हैं तो 6 घंटे की नींद आपके लिए खतरनाक साबित हो सकता है और आपमें डिमेंशिया का कोई ना कोई लक्षण आ सकता है"। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने कहा है कि 6 घंटे से कम सोने वाले लोगों में डिमेंशिया होने का खतरा 30 फीसदी से ज्यादा बढ़ जाता है। इसके अलावा 50 साल की उम्र वाले लोग अगर 6 घंटे से कम की नींद लेते हैं तो फिर उन्हें कार्डियोमेटाबोलिक बीमारी और मानसिक बीमारी भी हो सकती है, जिसे डिमेंशिया के नाम से जाना जाता है।

फ्रेंच नेशनल हेल्थ रिसर्च इंस्टीट्यूट यानि आईएनएसईआरएम के लेखकों ने ब्रिटेन के लंदन में इस विषय पर 1985 से रिसर्च करना शुरू किया। जिसमें ब्रिटेन के 7959 लोगों को शामिल किया गया था। इस रिसर्च में यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन भी अपने आंकड़े दे रहा था। इस रिसर्च के दौरान रिसर्च में शामिल लोग कितनी देर सोते हैं और कितनी देर गहरी नींद में सोते हैं, उसपर नजर रखी गई। इस दौरान 3900 लोगों ने नींद पर नजर रखने वाली घड़ी भी पहन रखी थी। करीब 35 साल लंबा ये रिसर्च चला और फिर वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे कि 6 घंटे से कम सोने वाले लोग डिमेंशिया के शिकार हो सकते हैं।

डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट के मुताबिक हर साल पूरी दुनिया में करीब एक करोड़ लोग डिमेंशिया बीमारी और अल्जाइमर के शिकार होते हैं। रिपोर्ट में बताया गया है कि कम सोने की वजह से ये बीमारी और ज्यादा बढ़ती जाती है। हालांकि, कम सोने वाले जवान लोग भी क्या डिमेंशिया के शिकार हो सकते हैं, इसको लेकर अभी तक रिसर्च पूरा नहीं हो पाया है। वैज्ञानिकों ने कहा है कि रिसर्च के दौरान आगे पता चलेगा कि क्या ज्यादा देर सोने से डिमेंशिया बीमारी पर कंट्रोल हो सकता है या नहीं।

'व्यक्ति विशेष-चार्ल्स शोभराज'

शातिरी से दुनिया हैरान

रंजीत कुमार

नेपाल की जेल में बंद 'बिकनी किलर' और 'सीरियल किलर' के नाम से मशहूर शातिर चार्ल्स शोभराज ने विदेशी मीडिया को इंटरव्यू देकर दुनिया को हैरान कर दिया है। अप्रैल 2021 में हुए इस वाकये से सवाल उठ रहे हैं कि एक कैदी ने आखिर मीडिया से बात कैसे की। काठमांडू की सुंधारा सेंट्रल जेल के प्रमुख ने कहा कि इस मामले की जांच जारी है। नेपाल के गृह मंत्रालय ने कहा है कि किसी कैदी का मीडिया को इंटरव्यू देना गैरकानूनी है और मामले की जांच चल रही है। मंत्रालय के प्रवक्ता चक्र बहादुर बुढा ने कहा कि गृह मंत्रालय के अधीन किसी भी विभाग ने किसी भी मीडिया आउटलेट को चार्ल्स शोभराज का इंटरव्यू लेने की इजाजत नहीं दी है। मालूम हो कि चार्ल्स शोभराज पर चार दशक पहले नेपाल में एक अमेरिकी और एक कनाडाई महिला की हत्या का आरोप है और वे करीब 17 सालों से सुंधारा सेंट्रल जेल में बंद हैं। शुरूआती जांच से पता चला है कि शोभराज ने हफ्ते में कम से कम दो बार रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों को बुलाने के अपने अधिकार का दुरुपयोग किया होगा। जेलर लक्ष्मी बांस्कोटा के अनुसार शोभराज ने अपने परिवार या दोस्तों को बुलाया हो और मीडिया को अपना इंटरव्यू रिकॉर्ड कराया हो, लेकिन ये पक्का नहीं है। उनका दावा है कि जेल में फ्रांसीसी भाषा के अनुवादक की कमी के कारण भी ऐसी समस्या हो सकती है। फिलहाल जेल प्रशासन ये दावा भी कर रहा है कि हाल ही में वकील को छोड़कर किसी ने भी शोभराज से जेल में मुलाकात नहीं की है।

दरअसल, नेपाल में ये नियम है कि कैदी हफ्ते में दो बार रिश्तेदारों और परिवार के साथ टेलीफोन पर बातचीत कर सकते हैं। हालांकि ये भी कहा जा रहा है कि टेलीफोन पर बात करते समय विदेशियों के लिए केवल अंग्रेजी भाषा के इस्तेमाल की ही इजाजत है। दूसरी तरफ जेल प्रशासन का कहना है कि कैदियों को टेलीफोन पर बातचीत करने से पहले कम से कम तीन नबंर मुहैया कराना होता है और उनमें से केवल दो से संपर्क किया जा सकता है। जेलर लक्ष्मी बांस्कोटा ने कहा कि उसी सुविधा के तहत शोभराज ने हर हफ्ते फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम में रिश्तेदारों और दोस्तों से टेलीफोन पर बात की। सेंट्रल जेल ने शोभराज के कॉल के सभी विवरण मामले की जांच कर रहे विभाग को सौंप दिये हैं और इस पहलू की गहराई से पड़ताल की जा रही है।

चार्ल्स जेल कई बार गया। वह खुद को इस तरह जेल के अनुकूल बना लेता था कि लगता था वहां सब उसके जानने वाले हैं। लेकिन, एक घटना वर्ष 1963 की है जब वह पहली बार जेल गया था। भयानक और खूंखार कैदियों के बीच चार्ल्स वहां के लिए छोटी मछली था...। चार्ल्स को एक लत लग गई वह थी जुए की लत। एक दिन वह सब कुछ हार गया। यहां तक कि उसने जो आभूषण अपनी पत्नी सेंटाल को दिये थे, वो भी हार गया और पैसे भी उधार हो गये।

चार्ल्स
नाम ही काफी है

चार्ल्स शोभराज जब आजाद होता था तो पूरी दुनिया की पुलिस उसके पीछे होती थी और जब वह कैद में है तब भी जेल के बाहर पुलिसवालों की नींद हराम है। चार्ल्स जेल में बंद अकेला शख्स है जो एक साल में लाखों डॉलर कमा लेता है। उसकी जिंदगी इस संतोष के साथ जेल में बीत रही है कि एक दिन वह जेल से छूटेगा और फिर अपनी पुरानी जिंदगी में वापस लौट आएगा।

उल्लेखनीय है कि विदेशी मीडिया को इंटरव्यू से पहले चार्ल्स का आचरण ऐसा नहीं था जिससे किसी को कोई परेशानी हो या फिर उन्होंने जेल का कोई अनुशासन तोड़ा हो। जेल के नियमों के अनुसार 70 साल के ज्यादा उम्र के नेपाली कैदियों को उनके अच्छे आचरण के आधार पर रिहा किया जा सकता है। चार्ल्स शोभराज कहते रहे हैं कि इस प्रावधान को नेपाली नागरिकों के साथ विदेशी नागरिकों के मामले में भी लागू किया जाना चाहिए। इसी आधार पर चार्ल्स ने अपनी रिहाई के लिए बार-बार याचिका दायर की थी।

अब इस पर हिन्दी में फिल्म बनी है। शोभराज के किरदार को बॉलीवुड के होनहार अभिनेता रणदीप हुड्डा ने पर्दे पर इसे हूबहू उतारने की कोशिश की है।

शोभराज वैसे तो वियतनामी-भारतीय है पर उसने फ्रांस की नागरिकता ले ली थी। हत्या के जुर्म में उसे उम्रकैद की सजा मिली। उस पर कई हत्याओं के आरोप लगे जिसके लिए उसे फांसी की सजा होनी चाहिए थी, लेकिन कई हत्याओं को कथित रूप से अभियोजन पक्ष ने ही छिपा लिया। चार्ल्स एक चालाक और शातिर अपराधी है। हत्या, लूटपाट, नशीली दवाएं बेचना, आभूषणों की चोरी इत्यादि उसके लिए सामान्य है। उसके जोखिम और साजिश से भरपूर जिंदगी को मीडिया में इतनी जगह मिली कि वह मशहूर हो गया। जेल में भी वह इतने मजे से रहता है कि कोई सुने तो ईर्ष्या हो जाए। जेल में रहने के बावजूद उसके पास टाइपराइटर, टीवी, रेफ्रीजिरेटर और एक बड़ा पुस्तकालय हुआ करता था। इसके अलावा वह अपने साथी कैदियों को खुश करने के लिए ड्रग्स भी रखता था।

फिलहाल चार्ल्स नेपाल के काठमांडू जेल में बंद है। बेशक चार्ल्स को वहां पहली जेल जैसी सुविधाएं नहीं मिली हैं लेकिन वह फिर भी चर्चा में आता रहता है। जिस समय भारतीय अदालत से शोभराज को हत्या के जुर्म में कड़ी सजा मिली थी। उसी दौरान उसने दिल्ली के तिहाड़ जेल में रहते हुए अपनी जिंदगी पर बनने वाली हॉलीवुड फिल्म के लिए 15 मिलियन डॉलर यानी आज की मुद्रा दर के हिसाब से 90 करोड़ रूपयों का सौदा किया। उस वक्त वह 52 वर्षीय था। जब वह पेरिस से लौटा था तो उसने मिडिया को अपना इंटरव्यू देने की लिए भी 5000 डॉलर वसूले थे।

चार्ल्स की मनोदशा को बचपन के दुष्प्रभाव, दिमाग पर चोट लगना, अत्यधिक उदासीन होना या माता-पिता का क्रूर व्यवहार होना से नहीं जोड़ा जा सकता। ये सारी चीजें सीरियल किलरों की पृष्ठभूमि को बयां करती हैं। लेकिन चार्ल्स शोभराज के मानसिक बीमारी के पीछे क्या था? पत्रकार रोबर्ट हर्ज ने लिखा कि मनोवैज्ञानिक बॉब हरे ने अपने शोध के आधार पर बताया कि यह जरुरी नहीं हैं कि जो लोग बुरा बर्ताव करे उन्हें पहले कोई मानसिक आघात हुआ हो। उनका कहना है कि शोभराज लोगों को सेक्स के दौरान आई खिन्नता की वजह से नहीं मारता था। बल्कि वह लोगों को अपने फायदे के लिए मारता था। वह उन लोगों के पासपोर्ट और दूसरे पहचान संबंधी कागजों का उपयोग तस्करी व कई गैर कानूनी धंधे चलाने में करता था।

चार्ल्स शोभराज उन लोगों को ही मारता था जो उसके रास्ते में होते थे या फिर जिसको मारने से उसको फायदा होता था। भारत में उसके मुकदमे के दौरान रिचर्ड नेवेल नाम की एक पत्रकार को चार्ल्स ने बताया था कि उसने अपने व्यवसाय के लिए लोगों का कत्ल किया या करवाया। चार्ल्स शोभराज का बचपन उसके माता-पिता के रहने के बावजूद एक परित्याग किए हुए बच्चे सरीखा था। भारतीय पिता और अविवाहित वियतनामी मां के बीच आपसी मतभेद का असर बड़े हो रहे चार्ल्स पर पड़ा। लिहाजा, उसका बचपन उदासियों में बीता। पहले बच्चे के जन्म के बाद ही उसके पिता ने उसकी मां को छोड़ दिया। उसकी मां सोंग का कहना था कि इस अलगाव की वजह उसके पिता ही थे। उसके पिता चार्ल्स के लिए बचपन में ही कुछ करना चाहते थे, पर चार्ल्स की दिमाग में यह बैठ गया था कि उसके पिता उसे अपनी ही तरह बनाना चाहते थे। अंततः चार्ल्स की मां सोंग एक फ्रेंच सैन्य अधिकारी से मिलीं और उन दोनों ने शादी कर ली। लेफ्टिनेंट अल्फोंस डारेव ने सोंग के बच्चे को अपनाया पर उसे अपना नाम देने से इंकार कर दिया। चार्ल्स के नए पिता लेफ्टिनेंट अल्फोंस का व्यवहार ठीक था पर उसके और सोंग से पैदा हुए बच्चे यानी उसके सौतेले भाई की वजह से वह अपने ही घर में बाहरी जैसा महसूस करने लगा। आगे चलकर अल्फोंस लड़ाई के दौरान मानसिक तनाव

की बीमारी से ग्रसित हो गया, जिससे उसका बचा जीवन अस्पताल में बीता।

चार्ल्स ने कहीं कहा था कि उसकी जिंदगी फ्रेंच कानून के खिलाफ थी और उसका प्यार वियतनाम के साथ था। उसके कहे अनुसार "मेरे अपराधिक कार्यों को हवा देने वाला एशिया है।" वह जब इस तरह से बोलता था तो मनोवैज्ञानिक तौर से काफी प्रभावित करता था। चार्ल्स जेल कई बार गया। वह खुद को इस तरह जेल के अनुकूल बना लेता था कि लगता था वहां सब उसके जानने वाले हैं। लेकिन, एक घटना वर्ष 1963 की है जब वह पहली बार जेल गया था। भयानक और खूंखार कैदियों के बीच चार्ल्स वहां के लिए छोटी मछली था। लेकिन चार्ल्स को कराटे का ज्ञान था जिसका वह अपने बचाव के लिए इस्तेमाल करता था। 16वीं शताब्दी में बना पोईसी जेल पेरिस शहर से दूर एक एकांत जगह पर था। पहले वह बैरागियों का निवास था, लेकिन बाद में फ्रेंच क्रांति के समय उसे जेल में तब्दील कर दिया गया था। इस कैदखाने की दीवारें इतनी मोटी और ऊंची थीं कि इस दुनिया का बाहरी दुनिया का कोई वास्ता नहीं था। इसमें बने जेल के कमरे इतने संकरे थे कि केवल उसमें सोया जा सकता था। दिन के समय कैदी बाहर निकल कर छोटी-छोटी टोलियों में रहते थे। चार्ल्स शोभराज जब जेल के अंदर था तो वहां की दुनिया देखकर उसकी रूह कांप उठी। शोभराज जेल में चुपचाप ही रहता था। उसे जो भी मांगना होता था वह इशारे से मांगा करता था। वहां के जेलर उसे किताब पढ़ने के लिए कहते थे, पर वह नहीं पढ़ता था। वहां फेलिक्स नाम का एक अमीर आदमी उससे टकराया। उसे लोगों की मदद करना अच्छा लगता था। वह हर हफ्ते जेल में आता था, और वहां लोगों की समस्याएं सुनता था। जहां तक संभव होता था उनकी मदद करता था। चार्ल्स यह देखकर बड़ा प्रभावित हुआ और उसे अपना आदर्श बना लिया। फिर उसे अपने रक्षक के रूप में मानने लगा।फेलिक्स ने चार्ल्स और उसके पिता के बीच सामंजस्य बिठाने की कोशिश भी की। साथ में चार्ल्स और उसकी मां को भी मिलाया। वह कुछ हद तक सफल भी रहा। इस तरह फेलिक्स ने चार्ल्स का मानसिक संतुलन बनाए रखने और उसे एक सही रास्ते पर लाने की कोशिश की। इस दौरान उसे कुछ दिन बाद पैरोल पर रिहा कर दिया गया, लेकिन वह अपने घातक व्यवहार के कारण दुबारा 8 महीने के लिए जेल आ गया। शोभराज के सजा के समय फिलिक्स ने जज को पत्र लिखकर उसके अच्छे व्यवहार के बारे में बताया था। यह भी कहा था कि उसे सजा देने से पहले एक बार मनोचिकित्सक की सलाह जरुर लें।

बाद के दिनों में चार्ल्स शोभराज की एक खूबसूरत पारसी लड़की सेंटाल से नजदीकी बढ़ी। सेंटाल अपने माता- पिता के साथ रहती थी। एक पार्टी के दौरान वह चार्ल्स से मिली। उसके बाद वह जल्द ही चार्ल्स के करीब आ गयी। दरअसल, चार्ल्स की शारीरिक बनावट ऐसी थी कि ऐसा संभव ही नहीं था कि कोई भी लड़की उसके आकर्षण से मुक्त रह सके और उस पर फिदा न हो जाये और फिर उसके पास अपनी बहादुरी के किस्से भी थे। चार्ल्स ने सेंटाल को बताया था कि वह साइगॉन के एक धनी परिवार से है। उसके बोलने का अंदाज बिलकुल किवियों की तरह था। इस तरह उसने सेंटाल को शादी के लिए तैयार कर लिया, लेकिन इसके बावजूद सेंटाल के माता-पिता को वह शादी के लिए नहीं मना सका।

सेंटाल के माता-पिता फ्रेंच कैथोलिक प्रथा को माननेवालों में से थे। उन्हें चार्ल्स से शादी इसलिए मंजूर नहीं थी, क्योंकि चार्ल्स के पिता कैथोलिक समुदाय से नहीं थे। सेंटाल कहती थी कि "मुझे फर्क नहीं पड़ता की वह अमीर है या नहीं।" उसके बाद आठ महीने के जेल के दौरान वह हमेशा उसके साथ रहती थी। वह अपने दोस्तों और साथ काम करने वाले लोगों को ये बताती थी कि उसे सेना में भर्ती करने के लिए बुलाया गया था।

धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ उसने अपने घोटालों से काफी धन एकत्र कर लिया। इसके बाद सेंटाल के माता-पिता थोड़े संतुष्ट हो गए और चार्ल्स से उसकी शादी करा दी। कुछ दिनों बाद सेंटाल को महसूस हुआ कि वह गर्भवती हो चुकी है तो उसी समय चार्ल्स ने यूरोप छोड़ने का निर्णय लिया। वह यहां ओरिएंट क्षेत्र का काम संभालता था। जहां से वह पूरे फ्रांस में नकली चेक के जरिए धोखाधड़ी का काम करता था।

चार्ल्स एक बार फिर फेलिक्स से मिला और उसकी कार एक-दो दिन के लिए उधार मांगी। इसके बाद उसने अपना कमाया हुआ पूरा धन उस कार में भरा और पूर्वी यूरोप के रास्ते देश छोड़ दिया। इस बीच उसके संपर्क में आने वाले लोगों को भी वह लूटता रहा। अंततः फेलिक्स से मांगी हुई कार के साथ इस्तांबुल जा पहुंचा और अंत में वह भारत आ गया, जहां सेंटाल ने चार्ल्स के बच्चे को जन्म दिया। इस बीच पेरिस में अधिकारियों की एक टीम चार्ल्स और उसकी पत्नी के बारे में पूछताछ के लिए चार्ल्स के दोस्तों से मिल रही थी। भारत में आने के बाद चार्ल्स एक 'फ्रेंच सोसाइटी' से जुड़ गया। चार्ल्स एक ऐसा व्यक्ति था, जो आसानी से किसी के भी साथ मेलजोल बना लेता था। उसने यहां के अमीर लोगों में अपनी पहचान बना ली। सेंटाल तो एक सुंदर और आकर्षक दिखने वाली महिला थी ही। उसके साथ एक प्यारा बच्चा भी था। इसके कारण लोगों ने उनका चाय और पार्टी देकर स्वागत किया। सेंटाल अपनी शादी के बाद भी चार्ल्स के काम के बारे में बिलकुल नहीं जानती थी। वह चार्ल्स से उसके काम के बारे में पूछती थी, पर वह स्पष्टता से कुछ नहीं बताता था। इस तरह वह कई महीने बीतने के बाद भी अपना काम करता रहा। पुलिस को इस बात की खबर तक नहीं थी। 1970 के दौरान उसने चोरी की गई कारों की दलाली करनी शुरू कर दी। वह अमेरिकन, यरोपियन, फ्रेंचमैन व रईस भारतीयों (जो विदेशी कारों के रखने के शौकीन थे) को बेचता था। वह पाकिस्तान और ईरान से कारों की चोरी करता और भारत में बॉर्डर के रास्ते लाता था। भारत के बॉर्डर पर तैनात कुछ सुरक्षा कर्मी भी चार्ल्स की मदद करते थे। उसके बदले में चार्ल्स उन्हें पैसे भी देता था। वह भारत में इसकी नीलामी करता था। चार्ल्स का यह धंधा काफी अच्छा चल रहा था। इस बीच वह घर से दूर रहता था तो उसे सेंटाल की याद भी सताती थी। चार्ल्स उसे काफी आभूषण लाकर देता था। इसी बीच चार्ल्स को एक लत लग गई वह थी। जुए की। एक दिन वह सब कुछ हार गया। यहां तक की उसने जो आभूषण सेंटाल को दिये थे, वो भी हार गया और पैसे भी उधार हो गये। अचानक उसे एक फ्रेंचमैन मिला, जिसने उसे एक गहने की दुकान से चोरी का आइडिया बताया।

दिल्ली के होटल अशोका के ऊपर की छत तोड़ कर चार्ल्स शोभराज ने चोरी की। उसने मालिक की कनपटी पर बंदूक रख कर तिजोरी से सारे पैसे और आभूषणों को बैग में भरा और चंपत हो गया। वह दिल्ली हवाई अड्डे पर मुंबई जाने की लिए पहुंचा, लेकिन वहां कस्टम अधिकारियों की जांच के दौरान उन्हें कुछ संदिग्ध लगा। इसलिए उन्होंने बैग से भरा लूट का सारा माल जब्त कर लिया। चार्ल्स पकड़े जाने के डर से भाग निकला। वह दुबारा कार की चोरी के धंधे में लग गया, लेकिन कुछ समय बाद ही पकड़ा गया। उसे दिल्ली के तिहाड़ जेल भेज दिया गया। उसने नाटक करके जेल से भागने की साजिश की, लेकिन वह कामयाब नहीं हो पाया।

चार्ल्स ने अल्सर के बहाने हॉस्पिटल में भर्ती होने की साजिश रची। इसमें उसकी पत्नी ने भी उसका साथ दिया, पर वह दुबारा अपनी पत्नी के साथ पकड़ा गया। इस बार दोनों को जेल जाना पड़ा, लेकिन सेंटाल को जमानत मिल गई। कुछ दिन बाद उसने जमानत के लिए साइगॉन में रह रहे अपने पिता से पैसे मांगे और अपनी जमानत करवाई। इसके बाद वह भारत से भाग निकला। भारत से भागने के बाद चार्ल्स का नया ठिकाना बना काबुल यानी अफगानिस्तान।

वह यहां हिप्पियों को बड़े आराम से ठगता और लूटता था। खासकर उनको जो नशीली दवाएं खरीदने के लिए यूरोपियन देशों से आते थे। उसकी जिंदगी बड़े आराम से कट रही थी, लेकिन उसे जल्द ही काबुल से निकलने की इच्छा हुई। इसी बीच उसे काबुल पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। उसने फिर जेल से भागने का षडयंत्र रचा। चार्ल्स ने एक सिरिंज खरीदी और उससे अपना खून निकला और पी गया। वह ऐसा दिख रहा था जैसे अल्सर हुआ हो। उसे हास्पिटल ले जाया गया, जहां से वह ईरान भाग गया। अगले साल उसने यूरोप के चक्कर काटे पर उसने ज्यादा समय कहीं नहीं बिताया। शायद उसे पकड़े जाने का डर सता रहा था। चार्ल्स के पास करीब 10 पासपोर्ट थे, जिसमें से कुछ चुराये और कुछ खरीदे हुए थे। वह अपना पासपोर्ट बदलता और फिर उसी नाम से वह जाना जाता। उसने बाद में पुलिस को जानकारी दी कि 1972-1973 के दौरान उसने कराची, रोम, तेहरान, काबुल, युगोस्लाविया, बुल्गारिया और कोपेहेगन की यात्राएं कीं।

इधर काबुल में अपने परिवार को छोड़कर भागने के बाद वह समझ चुका था कि इस शादी का अंत हो चुका है। बेचारी सेंटाल जान चुकी थी कि अंतराष्ट्रीय अपराध पुलिस संगठन के पास उसके पति के साथ उस पर भी अपराधिक गतिविधियों से संबंधित मामला दर्ज हो चुका है। वह नहीं चाहती थी कि वह दुबारा चार्ल्स से मिले। वह कुछ समय बाद पेरिस चली गई। अंतराष्ट्रीय अपराधी के तौर पर कुख्यात होने के बाद

चार्ल्स को छिपने के लिए कुछ ही देश बचे थे। कुछ इस तरह से इस्तांबुल में वह अपने छोटे भाई एंड्र्यू से मिला, जहां वह चार्ल्स के साथ घोटालों में सक्रिय हो गया। क्योंकि चार्ल्स अंतराष्ट्रीय अपराधी हो चुका था, इसलिए उनसे अपने भाई को राजी कर लिया था कि वह फ्रांस कभी नहीं जाएगा, बल्कि वह पूर्व के देशों में जाएगा जहां उसे कोई पहचान न पाए। फिलहाल वह तुर्की गया, जहां उसने कुछ छोटी-मोटी लूटपाट की और वहां से फरार हो कर ग्रीस चला गया। वहां एथेंस में उसने कुछ अच्छे नागरिकों को अपना शिकार बनाया। उसी दौरान वह छोटे-मोटे आभूषणों की चोरी में गिरफ्तार कर लिया गया। चार्ल्स ने खुद को एंड्र्यू बताया और जेल से कुछ हफ्तों बाद छूट गया। जब तक पुलिस को इस बात की जानकारी हुई एंड्र्यू ही अंतर्राष्ट्रीय अपराधी चार्ल्स है, वह देश से निकल चुका था। एंड्र्यू को पुलिस गाड़ी से भागने से जुर्म में ग्रीस पुलिस ने उस पर और चार्ज लगा दिया और इस तरह वहां की अदालत ने उसे 18 वर्ष की सजा सुनाई। इस बीच थाइलैंड में चार्ल्स मैरी एंड्री के संपर्क में आया जो उसकी प्रेमिका बनी।

वर्ष 1970 के दशक में चार्ल्स ने विदेशी पर्यटकों को अपना निशाना बनाना शुरू किया। वह उनका मित्र बनकर उनके लिए नशीली दवाइयां देता, फिर उनकी हत्या कर देता था। विदेशी महिलाएं उसका मुख्य शिकार बनतीं थी। 1972-1976 के बीच उसने 24 लोगों की हत्या की थी। 1986 में चार्ल्स अपने साथियों के साथ तिहाड़ जेल से भागने में कामयाब रहा। वर्ष 2003 में नेपाल जाने के बाद उसे 1975 में हुए दो हिप्पियों की हत्या के आरोप में आजीवन कारावास की सजा दी गई।

नेपाल में सजा काटने के दौरान 2008 में चार्ल्स ने बहुत ही छोटी आयु की एक नेपाली लड़की निहिता बिस्वास के साथ जेल में ही शादी कर ली। निहिता और उसके परिजन चार्ल्स के साथ उसके संबंध को अपनी रजामंदी दे चुके हैं। एक कुख्यात अपराधी होने के बावजूद चार्ल्स को जो लोकप्रियता हासिल हुई वह अपने आप में बहुत बड़ी है। अपराधों और हत्याओं जैसी वारदातों को अंजाम देते हुए चार्ल्स ने जिन तकनीकों और रणनीति का प्रयोग किया वह अपने आप में हैरानी पैदा करने वाली भी है।

जान की कीमत पर माइका की निकासी

रिंकेश कुमार

गिरिडीह (झारखंड) के गावां व तिसरी में जान जोखिम में डाल कर अवैध उत्खनन करने वाले ढीबरा मजदूर बदहाली में जीने को मजबूर हैं। उनकी जान पर हमेशा शामत बनी रहती है, परिवार का भरन पोषण कर पाना होता है मुश्किल। यहां 150-200 फीट अंदर गहराई में जा कर मजदूर माइका निकालते हैं। सरकार और प्रशासन के पास नहीं है मजदूरों की इस हालत का जवाब। कोरोबारियों को फायदा, सरकार को राजस्व का हो रहा है नुकसान। गिरिडीह जिले के गावां तीसरी वन प्रक्षेत्र में माइका का अकुत भंडार है और इसे निकालने के लिए हजारों मजदूर पहाड़ों का सीना चीर 150-200 फीट अंदर गहराई में जाकर खनन करते हैं। बावजूद इसके वे बदहाली में जीने को मजबूर हैं। हालांकि इस धंधे में माइका कारोबारियों को बड़ा लाभ पहुंचता है, मगर मजदूरों को उनकी उचित मजदूरी व सरकार को राजस्व नहीं मिलता है। लिहाजा, माइका का कारोबार करने वाले लोग ओर अमीर होते जा रहे हैं, वहीं मौत की सुरंग में काम करने वाले मजदूरों को जीवन यापन करना भी मुहाल होता जा रहा है।

अगर मजदूरों से उनकी मन की बात की बात करें तो उनका कहना है कि साहब भूखे पेट और परिवार-बच्चों की ख्वाहिशें हमें इन सुरंगों तक ले जाती है। खनन करने के बाद मिलने वाली मजदूरी से उनकी ख्वाहिशें तो पूरी नहीं हो पाती हैं, लेकिन उनके परिवार का किसी तरह भरण-पोषण हो जाता है। पहाड़ों में माइका अब गहराई में मिलता है और इसमें जोखिम होने के बाद भी साधन के अभाव में वे उतरते हैं। अगर सरकार माइका को वैध कर देती और साधन मिल जाता तो आज हमें मजदूरी भी अधिक मिलती।

सूत्रों की अगर मानें तो मजदूरों को खदान मालिक द्वारा चोरी छुपे मशीन व खनन के लिए कई बार उपकरणों का भी सहयोग दिया जाता है। मगर वन कर्मियों के दबाव व डर के कारण वे पूरी छूट के साथ खनन के लिए हर संभव सहायता नहीं कर पाते हैं। वैसे इसमें फायदा तो खदान संचालकों का ही है। कम से कम उनके खर्चे तो बच जाते हैं और कमाई का प्रतिशत बढ़ जाता है। सुविधा और साधन के अभाव में और खर्चे में कमी लाने के लिए खनन में कई बार जेसीबी मशीन व विस्फोटक का प्रयोग किया जाता है। जिसका नतीजा यह होता है कि कई गज जंगल उजड़ जाते हैं और इतना ही नहीं, इसके कारण कई मजदूरों को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ता है। विगत कुछ दिन पूर्व भी तिसरी के खिड़किया मोड़ में भी घर में विस्फोटक रखने के कारण एक ही परिवार के चार सदस्यों की जान चली गई थी। जिसके बाद प्रशासन ने गंभीरता दिखाते हुए विस्फोटक के कारोबारी को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया था।

लोगों की अगर मानें तो अगर इन क्षेत्रों में खनन के लिए सरकार लाइसेंस दे दे तो पूरी व्यवस्था और सावधानी के

पांच सालों में गयी हैं कई जानें

जिले के गावां व तिसरी प्रखंड के विभिन्न अवैध माइका खदानों में भू-धंसान होने पर मजदूरों का मरना अब आम बात होती जा रही है। प्रशासन इसे गंभीरता से तो लेता है, लेकिन हफ्ते दस दिन में मामले के ठंडा पड़ जाने के बाद भूल जाता है। जिससे पांच वर्षों के अंदर अब तक सैकड़ों से अधिक लोग मौत की नींद सो चुके हैं। इन मौतों में कुछ के शव उनके परिजनों को तो मिले हैं, मगर कई बार ऐसी स्थितियां भी आयीं कि अपनों का शव देखने के लिए भी परिजनों को तरसना पड़ा है। इनमें से अधिकांश मौतों के बारे में न तो प्रशासन को जानकारी मिल पाती है और न ही कोई सरकारी आंकड़े में दर्ज हो पाता है। क्योंकि खदान संचालकों द्वारा मृतक के परिजनों को मुआवजा देकर और ना मानने की स्थिति में डरा धमका कर मुंह बंद करवा दिया जा रहा है। ऐसे में वर्तमान समय में हो रही मौत और खनन के दौरान खतरे से मजदूर अनजान हैं और अगर उन्हें जानकारी होती भी है तो भी उन्हें मुआवजे से मिलने वाले पैसे में अपने परिवार के लिए भलाई दिखायी देता है।

साथ खनन का कार्य हो सकेगा और सैकड़ों की जान बच सकेगी।

वन विभाग व पुलिस बलों द्वारा बार-बार कार्रवाई के बाद भी इन क्षेत्रों में अवैध उत्खनन पर अंकुश नहीं लगाया जा सका है, क्योंकि सर्वप्रथम तो वन कर्मियों की कमी है और इसके साथ ही उनके पास पर्याप्त साधन नहीं है। इसके अलावा जंगली क्षेत्र होने के कारण इन खदानों तक पहुंचना बहुत मुश्किल है। इसके अलावा वन विभाग व थाना प्रशासन के कुछ कर्मियों की मिलीभगत होने के कारण भी छापेमारी से पूर्व सूचना माइका माफियाओं को मिल जाती है, जिससे यह हमेशा विफल साबित होता है।

अनुत्तरित है प्रश्न

अगर पूरा वाकया और हुई घटनाओं का गौर से मंथन किया जाए तो मन में सैकड़ों सवाल खड़े होने लगते हैं। सवाल ये कि आखिर इन सबका जिम्मेवार कोन है? सरकार को राजस्व की हानि के बावजूद इसे क्यूं वैध नहीं किया जाता है? आखिर कब तक खदान में मजदूर अपने परिवार के भरण पोषण के लिए मौत की भेंट चढ़ते रहेंगे? मजदूरों का सपना किस प्रकार साकार हो सकेगा? क्या कभी माइका का कारोबार करने वाले लोगों की तरह मजदूरों को भी माइका में अधिक मुनाफा हो सकेगा? इस प्रकार से जंगल उजाड़ने पर रोक नहीं लगाया गया तो आखिर कब तक प्राकृतिक संपदा बची रह सकेगी? ऐसे कई सवाल हैं, लेकिन इन सवालों का जवाब न तो सरकार के पास है और न ही प्रशासन के पास।

दो में बदला राज

तीन में फिर से ताज

पांच राज्यों में हुए चुनाव का परिणाम आने के बाद पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस, असम में भाजपा और केरल में वाम मोर्चा को फिर से ताज मिल गया है। जबकि तमिलनाडु और पुडुचेरी में राज बदल गया है। तमिलनाडु में द्रमुक ने अन्नाद्रमुक को तो रिप्लेस किया है। वैसे केंद्र शासित प्रदेश पुडुचेरी में भाजपा नीत सरकार बन गयी है। पश्चिम बंगाल में भाजपा नेता व केंद्रीय मंत्री बाबुल सुप्रियो टॉलीगंज सीट से 50 हजार से अधिक मतों के अंतर से चुनाव हार गये हैं। जबकि नंदीग्राम सीट में नाटकीय तरीके से अंतिम समय में आगे निकलकर ममता बनर्जी अपने प्रतिद्वंदी सुवेंदु अधिकारी से पिछड़ गयी और हार मान लिया। पूरे चुनाव परिणाम और बदले सियासी परिदृश्य पर बारीक नजर डाल रहे हैं- विश्वजीत घोष, प्रसन्नजीत साहा और प्रतीक साहा ।

पिनराई विजयन यानी धोतीधारी मोदी ने बनाया इतिहास

प्रसन्नजीत साहा

तमाम मुश्किलों और विपरीत परिस्थितियों के बाद भी जिस तरह से पीएम मोदी ने 2019 के लोकसभा चुनाव में भाजपा को जीत दिलायी उसी तरह केरल में पिनराई विजयन ने लेफ्ट या रेड फ्लैग के हाथ में लगातार दूसरी बाद सत्ता दिला दी। सीपीएम की अगुवाई वाले वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चे (एलडीएफ) को विधानसभा चुनाव में अपने नेतृत्व में जीत दिलाने वाले जिन पिनराई विजयन की आज तुलना दो शक्तिशाली राजनेताओं से की जा रही है। इन्हें कुछ लोग केरल के स्तालिन तो धामी वाले मोदी भी कहते हैं। क्योंकि विधानसभा चुनाव में इन्होंने 40 सालों के स्थापित एक मिथक को तोड़ इतिहार बना लिया। दरअसल पिछले 40 सालों से केरल में कोई भी सरकार दोबारा सत्ता में नहीं लौट पायी। पिनराई विजयन के आलोचकों और जबरदस्त प्रशंसक भी उन्हें, 'धोती पहनने वाले मोदी' या 'केरल के स्टालिन' कहते हैं। उनकी तुलना पूर्व सोवियत संघ के बेहद ताकतवर

कवर स्टोरी

पांच राज्यों का चुनाव परिणाम

नेता जोसेफ स्टालिन से भी की जा रही है। उनकी पार्टी के कुछ नेताओं ने चुनाव अभियान के दौरान इस बात पर आपत्ति जतायी थी कि पिनराई विजयन को 'कैप्टेन' क्यों कहा जा रहा है? कम्युनिस्ट विचारधारा वाले किसी भी दल के लिए ऐसी उपाधियां अभिशाप से कम नहीं मानी जातीं। सीपीएम के एक वरिष्ठ नेता को तो अपनी पार्टी के कार्यकताओं को याद दिलाना पड़ा था कि उनके वामपंथी दल में सभी लोगों यहां तक कि पोलित ब्यूरो सदस्यों तक का भी दर्जा बराबर होता है। हालांकि पिनराई विजयन की लोकप्रियता ऐसी रही कि समर्थकों और उनके कुछ कैडरों ने पार्टी के इन वरिष्ठ नेताओं की सलाह अनसुनी कर दी गयी। केरल के मुख्यमंत्री के बतौर पांच साल के कार्यकाल के बाद विजयन के बारे में उनके प्रशंसक और आलोचक दोनों ही ये बताते हैं कि उन्होंने केरल की जनता की भलाई के लिए कई कल्याणकारी उपाय किए हैं। उन्हें पेंशन और मुफ्त राशन दिया है। विजयन ने केरल को उन मौकों पर भी एक मजबूत नेतृत्व दिया, जब प्राकृतिक आपदाओं ने केरल पर हमला बोला। फिर चाहे निपाह वायरस हो या कोरोना वायरस का प्रकोप।

विजयन ने साबित किया है कि वे एक मजबूत नेता ही नहीं, कर्मठ मुख्यमंत्री भी हैं।

विजयन की भूमिकाओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि केरल के कम्युनिस्ट आंदोलन के बाकी नेताओं की कतार से वे अलग खड़े दिखते हैं। विजयन में नेतृत्व की कई वैसी ही खूबियां हैं, जो हम नरेंद्र मोदी में देखते हैं या जोसेफ स्टालिन में देख चुके हैं। लेकिन, उससे पहले हमें देखना होगा कि पिनराई विजयन की ये छवि कैसे बनी। नरेंद्र मोदी की तरह ही पिनराई विजयन भी एक साधारण परिवार से आते हैं। विजयन के माता-पिता केरल के कन्नूर जिले के पिनराई गांव के रहने वाले थे। वे ताड़ी बनाने वाले एल्वा समुदाय से आते हैं।

केरल के प्रशासनिक अधिकारियों ने पहली बार पिनराई विजयन का नाम सुना, जब विजयन ने फेरी का किराया बढ़ाने के खिलाफ छात्रों की एक हड़ताल की थी। तब वे केरल स्टूडेंट फेडरेशन के सदस्य थे, जो कम्युनिस्ट पार्टी के विघटन के बाद स्टूडेंट फेडरेशन ऑफ इंडिया में तब्दील हो गई थी। अर्थशास्त्र की डिग्री हासिल करने के बाद पिनराई विजयन ने हथकरघा मजदूर का भी काम किया था। जब पिनराई विजयन महज 20-22 बरस के थे तभी सीपीएम के कई अन्य कार्यकताओं के साथ उन्हें केरल में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के किसी सदस्य के पहले राजनीतिक हत्या का अभियुक्त बनाया गया था। हालांकि, पिनराई विजयन को तब अदालत ने रिहा कर दिया था, जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता वड्डीकल रामाकृष्णन की हत्या के इस मामले का इकलौता गवाह 1969 में अपने बयान से पलट गया था। वर्ष 1975 में जब इमरजेंसी लगी, तो विजयन को जेल जाना पड़ा था।

बताते हैं कि भारतीय लोकतांत्रिक युवा परिसंघ (डीवाईएफआई) के नेता रहते हुए पिनराई विजयन बिल्कुल तानाशाही का व्यवहार करते थे। वे अपनी आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। लेकिन, कन्नूर जिले में पार्टी के सचिव के बतौर पिनराई विजयन के काम ने उन्हें केरल में कम्युनिस्ट पार्टी के बेहद वरिष्ठ नेता वीएस अच्युतानंदन का करीबी बना दिया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में विघटन के बाद अच्युतानंदन, सीपीएम के संस्थापकों में से एक थे। वर्ष 1998 में चदायन गोविंदन की की मौत के बाद विजयन उनकी जगह पार्टी के राज्य सचिव बने। विजयन ने राज्य सचिव का पद रिकॉर्ड 17 बरस तक संभाला।

राजनीतिक प्रेक्षकों के अनुसार विजयन ने जो तौर तरीके अपनाए थे, वो स्टालिन से बिल्कुल अलग नहीं थे। जब स्टालिन सोवियत संघ में कम्युनिस्ट पार्टी के सचिव बने थे, तो उन्होंने हर उस नेता को निकाल बाहर किया था, जो भविष्य में उनके लिए खतरा बन सकता था। ऐसा करने से ही वे पार्टी में सबसे प्रभावशाली नेता बन गये। पिनराई के दोस्त से दुश्मन और फिर दुश्मन से दोस्त बने कुनाहानंदा नायर (जो बर्लिन नायर के नाम से मशहूर हैं) विजयन को हमेशा केरल का स्टालिन कहकर बुलाते थे। आलोचनाओं के बावजूद इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि विजयन ने पार्टी का आधार बढ़ाया है। सीपीएम को केरल में हमेशा ही 'हिंदू पार्टी' माना जाता रहा था। मछुआरा समुदाय से लेकर गरीब हिन्दू तबका सीपीएम के साथ है। केरल में ईसाई और मुसलमान आम तौर पर कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त लोकतांत्रिक मोर्चे (यूडीएफ) के साथ रहे हैं। इस मोर्चे में इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग ठीक उसी तरह एक बड़ा साझीदार है, जैसे केरल कांग्रेस (मणि) जो ईसाई समुदाय के हितों की नुमाइंदगी करती है। आरएसएस और भाजपा के सक्रिय होने और मोदी के प्रधानमंत्री बनने के दो-तीन साल बाद ही विजयन ने सीपीएम की 'हिंदू पार्टी' होने की छवि को बदल दिया। एक समय ऐसा था जब कहा जाता था कि सीपीएम अपने सदस्य गंवा रही है, लेकिन उसकी सदस्यता में कमी नहीं आ रही थी। इसकी वजह ये थी कि पार्टी मुस्लिम और ईसाई समुदाय के लोगों को अपने साथ जोड़कर नये सदस्य बना रही थी। विजयन ने ये काम बड़ी चतुराई से किया। अक्सर ऐसा हुआ कि अधिकारी ही नहीं राजनेता भी विजयन के आगे मुंह खोलने से डरते दिखे। लेकिन, उन्होंने कभी भी ईमानदार लोगों को ऐसा कुछ करने के लिए नहीं कहा जो गलत है। आम धारणा यही है कि वे किसी की सलाह नहीं लेते हैं। वैसे, ये सच नहीं है। वे लोगों की बातें सुनते हैं, हालांकि फैसले वे खुद लेते हैं। अब देखना ये होगा कि पिनराई विजयन अपने दूसरे कार्यकाल में खुद को कितना बदलते हैं और कैसे प्रयोग करते हैं।

कई भाजपाई सूरमा फेल

चला ममता बनर्जी का खेल

पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव में मुख्यमंत्री ममता बनर्जी सरकार की हैट्रिक बन ही गयी। माकपा-कांग्रेस गठबंधन से महज एक सीट पर फुरफुरा शरीफ के पीरजादा अब्बास सिद्दीकी की पार्टी इंडियन सेक्यूलर फ्रंट को जीत मिल सकी है। भाजपा के लिए बंगाल विधानसभा चुनाव बेहद खास था। इस चुनाव में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से लेकर गृह मंत्री अमित शाह, भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष जेपी नड्डा और कई राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने अपने पूरे लाव लश्कर के साथ पूरी ताकत झोंक दी थी। वहीं एक अकेली महिला ने अपने टूटे पैर से सभी दिग्गजों को क्लीन बोल्ड कर दिया।

एक रैली के दौरान जब ममता बनर्जी को चोट लगी तो इसका आरोप उन्होंने भाजपा पर लगाया। इसके बाद वे अपने टूटे पैर के साथ व्हीलचेयर पर बैठ कर चुनावी रैलियां करती रहीं। वे अपने मजबूत इरादों से देश के सबसे पसंदीदा नेता को चुनौती देती रहीं। अब जब पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी प्रधानमंत्री और केंद्रीय गृह मंत्री की चुनाव रणनीति पर भारी साबित हो गई हैं। ममता ने अपने 'खेला होबे' और 'बाहरी बनाम भीतरी' जैसे नारों को हथियार बनाया, जो बंगाल में बंगाली वोटों के ध्रुवीकरण का कारण बना। बंगाल विधानसभा चुनाव में टीएमसी की जीत के बाद ममता बनर्जी

विश्वजीत घोष

कवर स्टोरी

पांच राज्यों का चुनाव परिणाम

अब मोदी और भाजपा के खिलाफ विपक्ष का बड़ा चेहरा बन गयीं हैं। राजनीतिज्ञों का मानना है कि 2024 के आम चुनाव में ममता अगर विपक्ष का मुख्य चेहरा बनें को आश्चर्य नहीं होगा। यह कहना गलत नहीं होगा कि दीदी ने खुद के दम पर सभी को इस चुनावी मैदान में मात दे दी है।

पिछले 10 सालों से ममता बंगाल में एकछत्र राज करती रहीं। इस दौरान बंगाल में कोई उन्हें चुनौती नहीं दे सका। लेकिन 2019 के लोकसभा चुनाव में नतीजों ने ममता के लिए खतरे की घंटी बजा दी थी। लोकसभा में 18 सीटें जीतकर भाजपा ताकतवर प्रतिद्वंदी के तौर पर उभरी। साथ ही अपनी आक्रामक रणनीति से भाजपा ने दीदी की नाक में दम भी कर दिया। पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव इस बार मोदी बनाम ममता बन गया था। चुनाव प्रचार में भाजपा ने प्रधानमंत्री मोदी, राष्ट्रीय अध्यक्ष जेपी नड्डा से लेकर केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह, उत्तर प्रदेश के सीएम योगी आदित्यनाथ सहित कई बड़े नेताओं व केंद्रीय मंत्रियों को मैदान में उतार दिया था। फिर भी ममता बनर्जी के खेल में तमाम भाजपाई सूरता फेल हो गये। तृणमूल कांग्रेस अध्यक्ष ममता बनर्जी ने इस बार विधानसभा चुनाव में पार्टी की ओर से एक नारा दिया था-'खेला होबे।' अब चुनावी खेल में ममता और टीएमसी की भारी जीत हुई। दूसरी ओर अबकी बार दो सौ पार के नारे के साथ अपनी पूरी ताकत और संसाधनों के साथ सत्ता हासिल करने के लक्ष्य के साथ मैदान में उतरी भाजपा अपने लक्ष्य के मुकाबले 40 फीसद सीट भी हासिल नहीं कर सकी। पश्चिम बंगाल में इस साल की शुरूआत से ही भाजपा ने जिस आक्रामक तरीके से टीएमसी सरकार पर हमले के साथ बड़े पैमाने पर चुनाव अभियान छेड़ा था उससे कई बार राजनीतिक हलकों में भी भगवा पार्टी के सत्ता में आने या टीएमसी को कांटे की टक्कर देने जैसी संभावनाएं जतायी जाने लगी थीं।

कुछ राजनीतिक जानकारों ने तो भाजपा के 'ओशोल पोरिवर्तन' के नारे के सच होने की भी भविष्यवाणी की थी। लेकिन नतीजों ने साफ कर दिया है कि भाजपा के हिंदुत्ववाद पर ममता का बांग्ला उप-राष्ट्रवाद भारी रहा है। हालांकि यही टीएमसी की जीत की अकेली वजह नहीं है। करीब तीन महीने पूरी केंद्र सरकार के अलावा तमाम मंत्री और नेता और कई राज्यों के मुख्यमंत्री लगातार बंगाल में चुनाव प्रचार में जुटे रहे। इस दौरान शायद ही ऐसा कोई दिन बीता हो जब कोई केंद्रीय मंत्री या नेता यहां रोड शो या रैली नहीं कर रहा हो। खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने करीब डेढ़ दर्जन रैलियां की थी। केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह और दूसरे नेताओं की रैलियों और रोड शो की सूची तो काफी लंबी है। वैसे भाजपा ने टीएमसी को शिकस्त तो नहीं दी, लेकिन वर्ष 2016 की तीन सीटों के मुकाबले पार्टी के इस प्रदर्शन को बेहतरीन कहा जा सकता है। महज आधे दशक के बाद किसी अकेली पार्टी को भाजपा जितनी सीटें मिली हैं। लेकिन, अगर इसकी तुलना वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव के नतीजों से करें तो पार्टी के लिए यह एक बड़ा झटका है। दरअसल, भाजपा की पूरी रणनीति ही लोकसभा चुनाव में 21 सीटों पर मिली बढ़त के ईद-गिर्द ही बुनी गई थी। बंगाल में पार्टी की ओर से चुनाव प्रचार भले दर्जनों केंद्रीय नेताओं ने किया हो, लेकिन इस चुनाव की पूरी रणनीति शाह ने ही तैयार की थी। ऐसे में पार्टी का सपना टूटने का ठीकरा भी उनके सिर फूटना तय है।

भाजपा ने ममता बनर्जी के खिलाफ भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार और अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण का आरोप लगाया था। साथ ही पार्टी ने जातिगत पहचान का मुद्दा भी बड़े पैमाने पर उठाया था। मतुआ वोटरों को लुभाने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अपनी बांग्लादेश यात्रा के दौरान मतुआ धर्मगुरु हरिचांद ठाकुर के जन्मस्थान पर बने मंदिर में गये थे और वहां से लौट कर मतुआ-बहुल ठाकुरनगर में रैली भी की थी। अमित शाह ने सीएए के जरिए मतुआ समुदाय के लोगों को नागरिकता देने का वादा किया था। ममता ने भाजपा के हिंदुत्ववाद की काट के लिए चुनावी मंच से चंडीपाठ तो किया ही, खुद को ब्राह्मण की बेटी भी बताती रहीं। उनको अल्पसंख्यकों का तो भरपूर समर्थन मिला ही, हिंदू वोटरों के बड़े तबके ने भी टीएमसी का समर्थन किया। इसके अलावा उनके पांव में लगी चोट और व्हीलचेयर पर भी पूरा चुनाव अभियान चलाना भी उनके पक्ष में रहा। जानकारों के अनुसार 'कन्याश्री' और 'रूपश्री' जैसी योजनाओं की वजह से बंगाल में महिलाओं ने भी ममता का समर्थन किया। ममता अपने भाषणों के जरिए भाजपा को बाहरी बताते हुए जहां बांग्ला संस्कृति, पहचान और अस्मिता का मुद्दा उठाती रहीं, वहीं उन्होंने यह माहौल भी बनाया कि देश की अकेली महिला मुख्यमंत्री पर प्रधानमंत्री से लेकर तमाम केंद्रीय नेता और मंत्री किस कदर हमले कर रहे हैं। खासकर प्रधानमंत्री जिस तरह दीदी-ओ-दीदी कह कर ममता बनर्जी की खिल्ली उड़ाते रहे, उससे महिलाओं का एक बड़ा तबका ममता के साथ हो गया। ममता चुनाव आयोग पर जिस तरह हमले करती रहीं और उस पर भाजपा से सांठ-गांठ के आरोप लगाती रहीं, उसका भी फायदा टीएमसी को मिला है। इस चुनाव में कांग्रेस और लेफ्ट वाले संयुक्त मोर्चा की दुर्गति की वजह से इन दोनों दलों के वोटों का बड़ा हिस्सा भी टीएमसी को मिला। टीएमसी को कांग्रेस का गढ़ रहे मालदा और मुर्शिदाबाद में जैसी कामयाबी मिली है उससे यह बात साफ हो जाती है।

भाजपा को उम्मीद थी कि फुरफुरा शरीफ वाली पार्टी इंडियन सेक्यूलर फ्रंट शायद अल्पसंख्यक वोट बैंक में सेंध लगाएगी। लेकिन न तो वह कोई छाप छोड़ सकी और न ही असदउद्दीन ओवैसी की एआईएमआईएम ने। ममता ने भाजपा का मजबूत गढ़ समझे जाने वाले जंगलमहल इलाके में भी खासी सेंध लगाई है और साथ ही अपने मजबूत गढ़ को बचाने में काफी हद तक कामयाब रही हैं।

तृणमूल फूल भाजपा हाफ

कांग्रेस-सीपीएम साफ

पश्चिम बंगाल की राजनीति अब दो ध्रुवीय बन चुकी हैं। प्रचंड बहुमत से जीतने वाली तृणमूल कांग्रेस एक ध्रुव पर है तो दूसरे ध्रुव पर है 77 सीटों वाली भाजपा। अगर तृणमूल ने 213 सीटों पर जीत हासिल की है तो यह भी सच है कि पिछले 20 साल में पहली बार सत्ता पक्ष को इतने शक्तिशाली विपक्ष का सामना करना पड़ेगा। पिछले दो दशक में मुख्य विपक्षी दल का आंकड़ा कभी 60 से ऊपर नहीं गया। भाजपा ने इस रिकॉर्ड को तोड़ा है। तृणमूल को प्रचंड जनादेश तो मिला है लेकिन जनता ने ममता बनर्जी को हरा कर सत्ता पक्ष को संयम से काम करने की चेतावनी भी दी है। पश्चिम बंगाल में अब सिर्फ दो दलों की राजनीति चलेगी। तृममूल और भाजपा की। बाकी किसी दल के लिए कोई जगह नहीं है। पश्चिम बंगाल में 34 साल शासन करने वाला वाम मोर्चा जीरो पर लुढ़क गया तो 20 साल शासन करने वाली देश की सबसे पुरानी पार्टी, कांग्रेस खाता भी नहीं खोल सकी। 2021 के चुनाव में तृणमूल और भाजपा ने 290 सीटों पर जीत हासिल की है। इसके अलावा जिन दो सीटों पर जो जीत मिली है उनमें एक इंडियन सेक्यूलर फ्रंट के खाते में गयी है और दूसरी सीट गोरखा जनमुक्ति मोर्चा के खाते में।

प्रतीक साहा

टीएमसी के लिए सबक

तृणमूल को बेशक बहुत बड़ी जीत मिली है, लेकिन इसमें भविष्य की चेतावनी भी है। 3 से 77 पर पहुंचने वाली भाजपा को वह कमतर न समझे। माकपा की तरह तृणमूल वह गलती न करे जो उसने 2006 में की थी। उसने ममता बनर्जी की उभरती हुई ताकत की अनदेखी की थी। तब ममता बनर्जी की तृणमूल 30 सीटें जीत कर सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी बनी थी। सीपीएम की नींद तब भी नहीं खुली जब तृणमूल ने विधानसभा के उपचुनावों में चार सीटें जीत लीं। तृणमूल कांग्रेस को पछाड़ कर आगे निकल रही थी। लेकिन वामपंथी सत्ता को स्थायी मान कर गफलत में खोये रहे। 2011 में ममता बनर्जी ने 30 से सीधे 184 की

कवर स्टोरी

पांच राज्यों का चुनाव परिणाम

ममता की पराजय

प्रचंड जीत वाली पार्टी की मुख्यमंत्री का हार जाना विस्मयकारी है। ममता बनर्जी को ये समझना होगा कि उनके खिलाफ भी लोगों के मन में गुस्सा है। उन लोगों के मन में गुस्सा है, जिन्होंने कभी ममता बनर्जी को जमीन से आसमान पर पहुंचाया था। नंदीग्राम में ममता बनर्जी इस हार को नजरअंदाज कर जीत का जश्न नहीं मना सकती हैं। वे महाशक्तिमान नहीं हैं। अगर गलती करेंगी तो जनता उसका उत्तर जरूर देगी। यह उनका अभिमान ही था कि उन्होंने भवानीपुर सीट छोड़ कर नंदीग्राम से चुनाव लड़ने की जिद की थी। राजनीति में अहंकार और कटुता से नुकसान ही होता है। 1972 में कांग्रेस की जीत के बाद जब सिद्धार्थ शंकर राय पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बने थे तब उन्होंने नक्सलबाड़ी आंदोलन को ताकत के बल पर कुचल दिया था। इसका नतीजा आज तक कांग्रेस भोग रही है। वामपंथी कैडरों के आतंकराज को भी जनता ने 2011 में उखाड़ फेंका था। इन उदाहरणों के आधार पर राजनातिक पंडितों का कहना है कि भय और आतंक की राजनीति तृणमूल के लिए भी आत्मघाती होगी।

छलांग लगा कर वाममोर्चा के किले को धवस्त कर दिया। उस समय वामपंथी कहते थे कि गरीबों-मजदूरों की राजनीति करने वाले को कोई हरा नहीं सकता है। इस मुगालते में वामपंथियों का बेड़ा गर्क हो गया। इसलिए 2021 की प्रचंड जीत पर तृणणमूल को मदहोश नहीं होना चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि भाजपा भी 77 से 148 की छलांग लगाने के लिए तैयार बैठी है।

कम हो रहा लेफ्ट का प्रभाव

पश्चिम बंगाल की राजनीति से कांग्रेस और वाममोर्चा का सफाया होना एक निर्णायक घटनाक्रम है। योग्यता से अधिक की कामना करना पैर पर कुल्हाड़ी मारने की तरह है। पश्चिम बंगाल में वामपंथियों का प्रभाव लगातार कम हो रहा था। सीपीएम को 2016 में केवल 26 सीटों पर जीती थी। लेकिन उसने कांग्रेस पर दवाब बना कर 2021 में अपने लिए 137 सीटें ले लीं। 137 सीटों पर लड़ने के बाद भी सीपीएम की झोली खाली रह गयी। जो पहले था उसे भी संभाल न सकी। पश्चिम बंगाल के प्रबुद्ध वोटरों की नजर में वाम दल अब अप्रासंगिक हो गये हैं। कांग्रेस को 2016 में 44 सीटें मिलीं थीं। मोलभाव में 91 सीटें ही मिलीं। उसका भी सफाया हो गया। कांग्रेस ने 2019 के लोकसभा चुनाव में दो सीटें जीती थीं। वाममोर्चा को एक भी सीट नहीं मिली थी। दो साल पहले तक पश्चिम बंगाल में कांग्रेस की स्थिति कम से कम ऐसी जरूर थी कि वह आठ-दस सीटों पर जीत हासिल कर ले। लेकिन लोकसभा चुनाव और विधानसभा चुनाव के बीच ऐसा क्या हुआ कि कांग्रेस जीरो पर क्लीनबोल्ड हो गयी। राजनीतिक जानकारों का कहना है कि कांग्रेस को कमजोर चुनावी रणनीति की कीमत चुकानी पड़ी है।

कवर स्टोरी

पांच राज्यों का चुनाव परिणाम

पश्चिम बंगाल

इस्लामिक पार्टियों को मुसलमानों का दूर से सलाम

पश्चिम बंगाल चुनाव में इसबार मुसलमानों की दो-दो पार्टियों ने खूब जोर लगाया था। फुरफुरा शरीफ के मौलाना अब्बास सिद्दीकी के इंडियन सेक्युलर फ्रंट (आईएसएफ) की और हैदराबाद के सांसद असदुद्दीन ओवैसी की ऑल इंडिया मजलिस ए इत्तेहादुल मुस्लिमीन (एआईएमआईएम) में सिर्फ आईएसएफ की राष्ट्रीय सेक्युलर मजलिस पार्टी को ही एक सीट मिल पाई, जबकि उसने लेफ्ट फ्रंट और कांग्रेस के साथ गठबंधन करके संयुक्त मोर्चा के तहत चुनाव लड़ा। सवाल है कि तकरीबन 30 फीसदी मुस्लिम आबादी वाले बंगाल में इस्लामिक पार्टियों पर मुसलमानों ने भरोसा क्यों नहीं किया? वह ममता बनर्जी के नेतृत्व पर आंख मूंद कर विश्वास करके टीएमसी के साथ क्यों गये? पश्चिम बंगाल में आईएसएफ ने इस चुनाव में पहली बार राष्ट्रीय सेक्युलर मजलिस पार्टी के बैनर तले 30 सीटों पर चुनाव लड़ा था और सिर्फ भांगर विधानसभा सीट पर इसके चीफ यानी भाईजान (अब्बास सिद्दीकी) के भाई नौशाद सिद्दीकी ही जीत दर्ज करा पाये। मुसलमानों के प्रभाव वाली बाकी 29 सीटों पर जहां इसके प्रत्याशी मैदान में थे, उनमें से 26 तृणमूल कांग्रेस जीत गई है। बाकी 3 सीटें भाजपा के खाते में चली गई। लेकिन, दिलचस्प बात ये है कि भाजपा ने जो तीनों सीटें जीती हैं, वहां टीएमसी से उसकी जीत का अंतर आईएसएफ के उम्मीदवारों को मिले वोट से कहीं ज्यादा है। उदाहरण के लिए रानाघाट उत्तर पूर्व सीट को ही लीजिए। यहां आईएसएफ की पार्टी के उम्मीदवार को सिर्फ 2.42 फीसदी वोट मिले और टीएमसी 39.59 वोट जुटा सकी। जबकि, भाजपा उम्मीदवार ने 54.39 वोट हासिल किए। यह इस बात का संकेत है कि भाजपा के खिलाफ मुस्लिम वोट मुस्लिमों की पार्टी को न जाकर टीएमसी की ओर मुड़ गया। बिहार में 5 विधानसभा सीटें जीतने के बाद ओवैसी ने भी बंगाल में अपनी पार्टी से 7 उम्मीदवारों को टिकट दे दिया था। इन सातों सीटों पर तृणमूल का कब्जा हो गया और हैदराबाद के सांसद का पूरे भारत का मुसलमान नेता बनने का सपना मटियामेट हो गया। पार्टी को राज्य में कुल 0.02% वोट मिले। उसके उम्मीदवार चौथे-पांचवें और छठे नंबर पर रहे। जाहिर है कि मौलाना सिद्दीकी हों या असदुद्दीन ओवैसी, मुसलमान मतदाताओं ने बंगाल में मुस्लिम नेताओं पर यकीन करने के बजाय अपनी भरोसेमंद नेता ममता के नेतृत्व पर ही विश्वास करने में भलाई समझी है। मुर्शिदाबाद और मालदा जैसे मुस्लिम-बहुल जिलों में इसबार मुसलमानों के वोटिंग पैटर्न देखकर यह स्थिति और भी ज्यादा स्पष्ट हो जाती है। इन जिलों में 2016 के चुनाव के मुकाबले टीएमसी को बहुत ही ज्यादा सफलता मिली है। मुर्शिदाबाद जिले की 20 में से 16 सीटें टीएमसी के खाते में गई हैं और मालदा की 9 में से 5 पर उसका कब्जा हो गया है। पिछले चुनाव में मुर्शिदाबाद में तृणमूल महज चार सीटें जीती थी और मालदा में उसका खाता भी नहीं खुला था। ये जिले परंपरागत तौर पर कांग्रेस के गढ़ थे, जहां उसके दिग्गज गनी खान चौधरी का हर चुनावों में वर्चस्व नजर आता था। लेकिन, अब यहां ममता मुस्लिम वोटरों की नई मसीहा बनकर उभरी हैं। इसे भी पढ़ें- कैसे बंगाल जीतकर भी नंदीग्राम में सुवेंदु अधिकारी से हार गईं ममता बनर्जी? मोटे तौर पर माना जा रहा है कि भाजपा के आक्रामक प्रचार की वजह से तृणमूल को मुसलमानों को एकजुट करने का मौका मिला है। यह बात भी सही है कि ममता बनर्जी ने मुस्लिमों से चुनाव प्रचार के दौरान ऐसी विवादास्पद अपील भी की थी, जिसके चलते चुनाव आयोग ने उन्हें कुछ घंटों के लिए प्रचार करने से रोक भी दिया था। लेकिन, कुछ जानकारों का मानना है कि बंगाल के मुसलमानों का टीएमसी को वोट करने के पीछे यह एक कारण हो सकता है, लेकिन सिर्फ यही एकमात्र कारण नहीं है।

विश्वजीत घोष

कोलकाता के आलिया यूनिवर्सिटी में जर्नलिज्म के असिस्टेंट प्रोफेसर और राजनीतिक विश्लेषक मोहम्मद रियाज ने दि प्रिंट से कहा है कि 2018 के पंचायत चुनाव के समय से ही टीएमसी ने मालदा और मुर्शिदाबाद में कई तरह की योजनाएं शुरू कर दी थीं। पिछले कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में उसके चलते समुदाय का उसे समर्थन मिला है। इसके अलावा कांग्रेस में नेतृत्व संकट से भी यहां तृणमूल को फायदा मिला है।

कवर स्टोरी

पांच राज्यों का चुनाव परिणाम

देश में अबतक बनीं 16 महिला मुख्यमंत्री

सबसे कम उम्र की मुख्यमंत्री राबड़ी देवी 39 साल की उम्र में बनी जबकि सबसे ज्यादा उम्र की मुख्यमंत्री आनंदी बेन पटेल 73 साल में बनी। सबसे ज्यादा पांच बार मुख्यमंत्री बनने का श्रेय जयललिता को गया।

प्रतीक साहा

देश में अब तक 13 राज्यों असम, बिहार, दिल्ली, गोवा, गुजरात, जम्मू कश्मीर, मध्य प्रदेश, ओडिशा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल में 16 महिला मुख्यमंत्री बनी हैं। ममता बनर्जी ने पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री पद की शपथ ले ली है। अबतक की महिला मुख्यमंत्रियों में सुचेता कृपलानी, नंदिनी सत्पति, शशिकला काकोदर, अनवारा तैमूर, वीएन जानकी रामचंद्रन, जे जयललिता, मायावती, राजिंदर कौर भट्टल, राबड़ी देवी, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, उमा भारती, वसुंधरा राजे, ममता बनर्जी, आनंदीबेन पटेल और महबूबा मुफ्ती शामिल हैं। इनमें से चार मुख्यमंत्री का नाम 'स' अक्षर से हैं। जिनमें सुचेता कृपलानी, शशिकला काकोदर, सुषमा स्वराज और शीला दीक्षित शामिल हैं। इनमें से 11 के नाम में अंग्रेजी का 'टी' अक्षर शामिल है। इनमें से चार मुख्यमंत्री जनवरी महीने में पैदा हुई जिनमें शशिकला काकोदर, मायावती, राबड़ी देवी और ममता बनर्जी शामिल हैं। इनमें से दो मुख्यमंत्री 24 तारीख को पैदा हुई जिनमें अनवारा तैमूर और जयललिता शामिल हैं। वर्ष 1959 में तीन मुख्यमंत्री राबड़ी देवी, उमा भारती और महबूबा मुफ्ती पैदा हुई। पहली मुख्यमंत्री सुचेता कृपलानी 1908 में पैदा हुई जबकि महबूबा मुफ्ती 1959 में पैदा हुई। सबसे कम उम्र की मुख्यमंत्री राबड़ी देवी 39 साल की उम्र में बनी जबकि सबसे ज्यादा उम्र की मुख्यमंत्री आनंदी बेन पटेल 73 साल में बनी। तीन राज्यों से दो मुख्यमंत्री बनी। तमिलनाडु से वीएन जानकी रामचंद्रन और जयललिता तथा उत्तर प्रदेश से मायावती और उमा भारती तथा दिल्ली से शीला दीक्षित और सुषमा स्वराज का नाम शुमार है। सबसे ज्यादा पांच बार मुख्यमंत्री बनने का श्रेय जयललिता को गया।

कवर स्टोरी

पांच राज्यों का चुनाव परिणाम

पश्चिम बंगाल

हरबार बहुमत की सरकार

पश्चिम बंगाल में पूर्ण बहुमत की सरकार का इतिहास रहा है। देश के किसी राज्य में इस तरह की बहुमत शायद ही कभी देखी गयी हो। जब भी यहां की जनता ने वोटिंग की, खुल कर की। यह पश्चिम बंगाल का इतिहास रहा है कि यहां की जनता को जो नेता पसंद आता है वे मतदान उन्हीं के पक्ष में करते हैं। वर्ष 1952 से अगर देखा जाये तो हर बार पूर्ण बहुमत में ही सरकार बनी। चाहे वो कांग्रेस हो, युनाईटेड फ्रंट हो या वाम मोर्चा हो या फिर तृणमूल कांग्रेस हो। जिसे यहां की जनता ने नकारा उसे फिर पीछे मुड़ कर नहीं देखा। इस बार भी 2021 के चुनाव में तीसरी बार तृणमूल कांग्रेस के पक्ष में बंगाल की जनता ने अपना बहुमत दिया। लेकिन वाम मोर्चा व कांग्रेस को बंगाल की जनता ने पूरी तरह नकार दिया। कांग्रेस और वाम मोर्चा को तो यहां की जनता ने अपना खाता तक नहीं खोलने दिया। राजनीतिक विश्लेषकों में यह कोतुहल का विषय भी बन गया है कि जो पार्टी दशकों तक बंगाल की सत्ता पर काबिज रही उसका नामो निशान यहां की जनता ने मिटा दिया। 1952 से लेकर 2011 तक अगर देखा जाय तो यहां की जनता ने इन्हीं युनाईटेड फ्रंट, कांग्रेस व वाममोर्चा को पूर्ण बहुमत देख कर सत्ता पर बनाये रखा। लेकिन 2011 के बाद से अब तक जो हाल यहां की जनता ने इन पार्टियों का किया यह चौंकाने वाला जरूर है।

इस चुनाव में भी वाममोर्चा की सभा में भीड़ को देख राजनीतिक विश्लेषक अंदाजा लगा रहे थे कि जनता इस बार वाम मोर्चा के पक्ष में अच्छी खासी वोटिंग करेगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। एक भी सीट न तो कांग्रेस को न ही वाम मोर्चा को लेने दिया। नतीजा सबके सामने है। हां एक बात यहां गौर करने वाली जरूर है कि तृणमूल कांग्रेस से चुनावी मैदान में दो-दो हाथ करने को उतरी भाजपा की सीटों में इजाफा हुआ। 2016 में तीन के आंकड़े को भाजपा ने 77 तक जरूर पहुंचा दिया। थोड़ा ही सही, लेकिन बंगाल में भाजपा का जनाधार बढ़ा है। संसदीय चुनाव में सीटें जीतने के बाद भाजपा के हौसले बुलंद थे। उस हौसले को भरपूर आजमाने की कोशिश पार्टी ने 2021 के विधानसभा चुनाव में की। थोड़ी सफलता भी मिली। लेकिन तृणमूल कांग्रेस ने इन्हें इस बार भी सत्ता में आने नहीं दिया। राजनीतिक विश्लेषकों की मानें तो यह चुनाव भाजपा के लिए मिसिंग प्वाइंट रहा। राजनीति के पंडित तो यहां तक मानने लगे हैं कि इतनी आजमाइश के बाद अब जब भाजपा सत्ता में नहीं आ पायी तो बंगाल में इनका राजनीतिक भविष्य

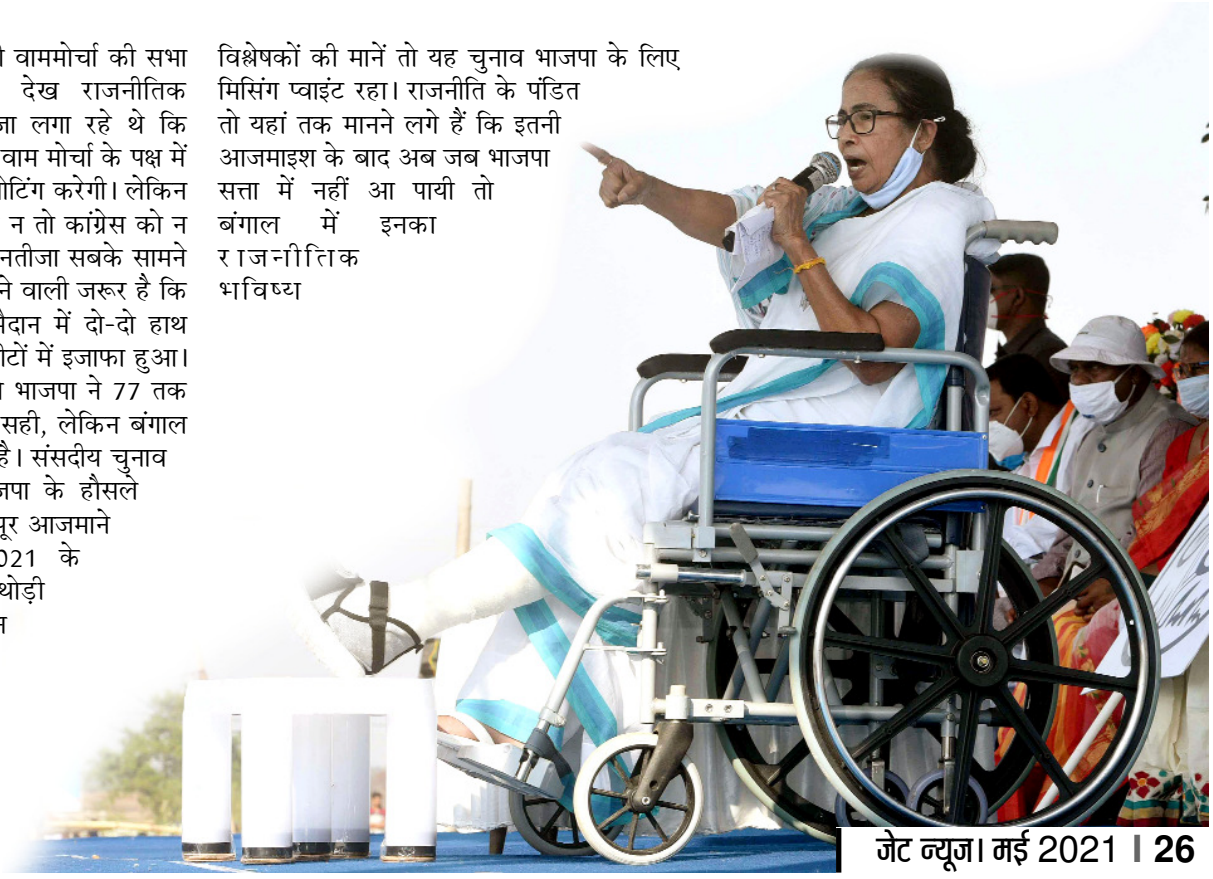

कवर स्टोरी

पांच राज्यों का चुनाव परिणाम

पहले जैसी भी नहीं रहेगी। हालांकि जनता का मूड किस चुनाव में बदल जाये इसका अंदाजा कोई नहीं लगा सकता, खासकर पश्चिम बंगाल में, जहां की जनता एक मुश्त वोट अपने चहेते को देती है। अगर बंगाल में पूर्ण बहुमत की सरकार के इतिहास पर गौर करें तो यह चौकाने वाला जरूर है। वर्ष 1952 से लेकर 2021 तक पश्चिम बंगाल का यह 17वां विधानसभा चुनाव था। इसके बीच जब भी कांग्रेस व वाममोर्चा या फिर युनाईटेड फ्रंट ने सरकार बनायी पूर्ण बहुमत से बनायी। एक आध बार इन्होंने गठबंधन कर पूर्ण बहुमत में सरकार बनायी। लेकिन, कांग्रेस के बाद तृणमूल कांग्रेस ही अकेली ऐसी पार्टी है जिसने अकेले पूर्ण बहुमत की सरकार पर खुद को काबिज किया। क्योंकि वाम मोर्चा के साथ सीपीआई, पश्चिम बंगाल सोशलिस्ट पार्टी एवं आरएसपी भी हुआ करती थी और युनाईटेड फ्रंट के साथ भी कई वामदल हुआ करते थे। इसलिए अकेली पार्टी में सरकार बनाने वाली कांग्रेस के बाद कोई दूसरी पार्टी बनी तो वो तृणमूल कांग्रेस रही।

पूर्ण बहुमत का इतिहास

विधानसभा चुनाव 1952

इस चुनाव में कांग्रेस ने 238 में 150 सीट जीत कर पूर्ण बहुमत लाया और विधान चंद्र राय के नेतृत्व में सरकार बनी।

विधानसभा चुनाव 1957

इस बार भी कांग्रेस कुल 252 में 152 सीट जीत कर सत्ता में आयी और इस बार भी विधान चंद्र राय मुख्यमंत्री बने।

विधानसभा चुनाव 1962

इस वर्ष भी कांग्रेस ने हैट्रिक मारी और कुल 252 सीट में 157 सीट जीत कर पूर्ण बहुमत लाया। लेकिन, इस बार प्रफुल्ल चंद्र सेन मुख्यमंत्री बने।

विधानसभा चुनाव 1967

इस बार कांग्रेस बैकफुट में गयी और वामदलों के युनाइटेड फ्रंट 138 सीट जीत कर पहली बार सत्ता पर बैठी। कांग्रेस को इस बार 127 सीट से ही संतोष करना पड़ा।

विधानसभा चुनाव 1969

इस बार युनाईटेड फ्रंट ने कुल 280 सीट में 214 सीट जीत कर पूर्ण बहुमत से सरकार बनायी। हालांकि 155 दिन बाद दुबारा चुनाव हुआ और बांग्ला कांग्रेस सत्ता में आयी।

विधानसभा चुनाव 1971

इस चुनाव में कांग्रेस ने जबरदस्त 216 सीट जीत कर फिर सत्ता में वापसी की और प्रफुल्ल चंद्र घोष ही मुख्यमंत्री बने। यह कांग्रेस की चौथी बारी थी।

विधानसभा चुनाव 1972

सातवें विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को फिर से जीत मिली। इस बार कांग्रेस ने सीपीआई के साथ मिलकर चुनाव लड़ा था। 216 सीटें जीत कर सिद्धार्थ शंकर राय मुख्यमंत्री बने।

विधानसभा चुनाव 1977

इस बार तख्तापलट हुआ। 294 में 231 सीट वाममोर्चा के खाते में गयी। माकपा नेता ज्योति बसु के नेतृत्व में राज्य में पहली बार बार मोर्चा की सरकार बनी।

विधानसभा चुनाव 1982

इस चुनाव में वाम मोर्चा ने 294 में से 238 सीटों पर जीत हासिल की थी। हालांकि बुद्धदेव भट्टाचार्य, अशोक मित्र, पार्थ दे जैसे वाम मोर्चा के कई बड़े नेता चुनाव हार गये थे।

विधानसभा चुनाव 1987

यह राज्य का 10वां विधानसभा चुनाव था और इसमें मोर्चा को कुल 251 सीटें मिली। जबकि कांग्रेस को 40 सीटें हासिल हुई। एक बार फिर ज्योति बसु मुख्यमंत्री बने।

विधानसभा चुनाव 1991

इस बार वाममोर्चा का नेतृत्व कर रही माकपा को अकेले 187 सीट जनता ने दिया था। सहयोगी दल 50 का आंकड़ा भी नहीं छू सके और एक बार फिर ज्योति बसु मुख्यमंत्री बने।

विधानसभा चुनाव 1996

इस चुनाव में ज्योति बसु के नेतृत्व वाले वाम मोर्चा ने लगातार पांचवीं बार जीत हासिल की। वाममोर्चा को 294 में से 203 सीटों पर जीत हासिल हुई।

विधानसभा चुनाव 2001

इस वर्ष तृणमूल कांग्रेस को ममता बनर्जी ने अस्तित्व में लाया और उन्होंने कांग्रेस के साथ मिलकर चुनाव लड़ा। लेकिन, वाममोर्चा इस बार भी सत्ता में आया।

विधानसभा चुनाव 2006

पहली बार मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य के नेतृत्व में चुनाव लड़ रहा वाममोर्चा 235 सीटें जीतकर एक बार फिर भारी बहुमत से सत्ता हासिल करने में सफल रहा।

विधानसभा चुनाव 2011

इस वर्ष तृणमूल ने वाममोर्चा की सत्ता का अंत किया। तृणमूल ने कांग्रेस के साथ चुनाव लड़ा, 227 सीटें जीत कर सत्ता में आयी। पहली बार ममता बनर्जी मुख्यमंत्री बनीं। अकेले तृणमूल को 294 में 184 सीटें मिली थी।

विधानसभा चुनाव 2016

इस वर्ष तृणमूल कांग्रेस ने अकेले 211 सीटें जीत कर सत्ता में आ गयी। अकेले तृणमूल ने सरकार भी बनायी, ममता बनर्जी मुख्यमंत्री बनीं।

2013 में आया 'नोटा'

जब इस विकल्प की मिली अनुमति

- **बंगाल विधानसभा चुनाव में नोटा ने बिगाड़े कई सीटों के समीकरण।**
- **मतदाताओं को अपनी नापसंदगी जाहिर करने का अवसर देता है नोटा।**
- **पश्चिम बंगाल में नोटा मतों की कुल संख्या 5,23,001 रही।**

प्रसन्नजीत साहा

पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव में 'नोटा' विकल्प के प्रति मतदाताओं का रुझान बहुत अधिक नहीं रहा है, लेकिन इसके चलते राज्य की कुछ सीटों पर राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों का खेल जरूर बिगड़ा है। 'नोटा' यानी नान ऑफ द एबभ (उपरोक्त में से कोई नहीं) मतदाताओं को अपनी नापसंदगी जाहिर करने का अवसर देता है। ईवीएम में विभिन्न पार्टियों के प्रतीक चिन्हों के साथ दिये गये नोटा विकल्प के जरिए मतदाता यह जाहिर कर सकता है कि उसे कोई भी उम्मीदवार पसंद नहीं है। भारत में हुए अब तक के चुनावों में नोटा की कोई बहुत बड़ी भूमिका सामने नहीं आई है लेकिन कई बार यह उम्मीदवारों की चुनावी समीकरण को बनाने या बिगाड़ने में खासा असरदार रहा है।

2012 में सर्बिया में एक सीट पर जीता 'नोटा'

भारत के बाहर दूसरे देशों में ऐसे कई उदाहरण हैं जब नोटा की वजह से पूरी चुनाव प्रक्रिया प्रभावित हुई हो। उदाहरण के लिए 90 के दशक में रूस में नोटा वोटों के चलते 200 सीटों पर नए उम्मीदवार देकर दोबारा चुनाव कराने पड़े थे। क्योंकि उससे पूर्व हुए चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टी के सौ से अधिक उम्मीदवार नोटा से पराजित हुए थे। इसी तरह 2012 में सर्बिया के संसदीय चुनाव में एक सीट पर नोटा की जीत हुई थी।

हो रहा नोटा का इस्तेमाल

भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने 2013 में चुनाव आयोग को नोटा का विकल्प शामिल करने की अनुमति दी थी। तब से लेकर अब तक हर चुनाव में कमोबेश मतदाता नोटा का इस्तेमाल कर रहे हैं। इस बार के बंगाल विधानसभा चुनाव में कुछ संगठनों ने राजनीतिज्ञों पर दबाव बनाने के उद्देश्य से चुनाव से ठीक पहले मतदाताओं से नोटा का विकल्प चुनने की अपील की थी। कोलकाता स्थित गृह मालिकों के संगठन कैल्काटा हाउस ओनर्स एसोसिएशन ने बकायदा संवाददाता सम्मेलन बुलाकर कोलकाता के गृह मालिकों से नोटा का बटन दबाने की अपील की थी। इस अपील के बारे में संगठन के सचिव सुकुमार

रक्षित ने बताया कि हमने नोटा का आह्वान इसलिए किया था ताकि नेताओं को एक संकेत मिले। मतदाताओं पर उसका कितना प्रभाव पड़ा है यह कहना मुश्किल है।

दिनहाटा से निशिथ 57 वोटों से जीते

पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव में एक बार फिर मतदाताओं ने नोटा का विकल्प इस्तेमाल जरूर किया है। कुछ सीटों पर जीत हार में भी नोटा की बड़ी भूमिका रही है। उदाहरण के लिए कूचबिहार जिले की दिनहाटा विधानसभा सीट से भाजपा सांसद निशिथ प्रमाणिक महज 57 वोटों से चुनाव जीतने में सफल रहे। यहां विजयी एवं पराजित उम्मीदवारों के बीच महज 0.42 प्रतिशत मतों का अंतर रहा है। इस सीट पर नोटा मतों की संख्या 1537 रही है। इससे समझा जा सकता है कि अगर नोटा का विकल्प नहीं होता तो शायद नतीजे कुछ और होते।

असम में 'नोटा' को मिले 1,54,399 वोट

चुनाव आयोग के आंकड़ों के अनुसार चार राज्यों के चुनाव में असम में 1,54,399, केरल में 91,715, पुदुचेरी में 9,006 तथा तमिलनाडु में 1,84,604 वोट नोटा के खाते में गए जबकि पश्चिम बंगाल में नोटा मतों की संख्या 5,23,001 रही है। इन आंकड़ों से साफ है कि अन्य राज्यों की तुलना में पश्चिम बंगाल में नोटा का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर हुआ है। कई सीटों पर कुल मतों का एक प्रतिशत से भी कम वोट नोटा में पड़े हैं। इनमें हावड़ा जिले की आमता (1302 वोट), कोलकाता की एंटाली (991), वर्धमान की पूर्व स्थली उत्तर (1350), कोलकाता पोर्ट (1360), एवं बाली (1205) शामिल हैं। जिन सीटों पर एक प्रतिशत से अधिक मत नोटा के खाते में गए हैं उनमें कोलकाता की चौरंगी (2713), दमदम (2039), कस्बा (2476), काशीपुर बेलगछिया (1439), जादवपुर (2713), तारकेश्वर (2752), हावड़ा दक्षिण (2948), बोलपुर (3337), दार्जिलिंग (2540), तथा आउसग्राम (4039) शामिल हैं। भारत में अब तक हुए लोकसभा या विधानसभा चुनावों में ऐसा उदाहरण नहीं मिला है जहां नोटा में सबसे अधिक वोट पड़े हों। 2017 के गुजरात विधानसभा चुनाव में 118 सीटों पर नोटा तीसरे स्थान पर रही थी। पूरे राज्य में कांग्रेस, भाजपा और निर्दलीय उम्मीदवारों को मिले मतों के बाद ही नोटा का नंबर रहा था। 2018 के कर्नाटक विधानसभा चुनाव में नोटा को सीपीएम, बसपा जैसी पार्टियों से अधिक वोट मिले थे। उसी साल मध्य प्रदेश विधानसभा चुनाव में जहां कांग्रेस और भाजपा के बीच मतों का अंतर सिर्फ 0.1 प्रतिशत का था वहीं नोटा के हिस्से में 1.4 प्रतिशत वोट पड़े थे। नोटा का विकल्प अभी तक पसंद नापसंद जाहिर करने का ही माध्यम बना रहा है। इस विकल्प के जरिए एक मतदाता अपने क्षेत्र के सभी उम्मीदवारों के प्रति नापसंद जाहिर कर सकता है। नोटा विकल्प की वजह से राजनीतिक दलों पर अतिरिक्त दबाव रहता है और वे मतदाताओं के प्रति अधिक जिम्मेदार रहने की कोशिश करते हैं।

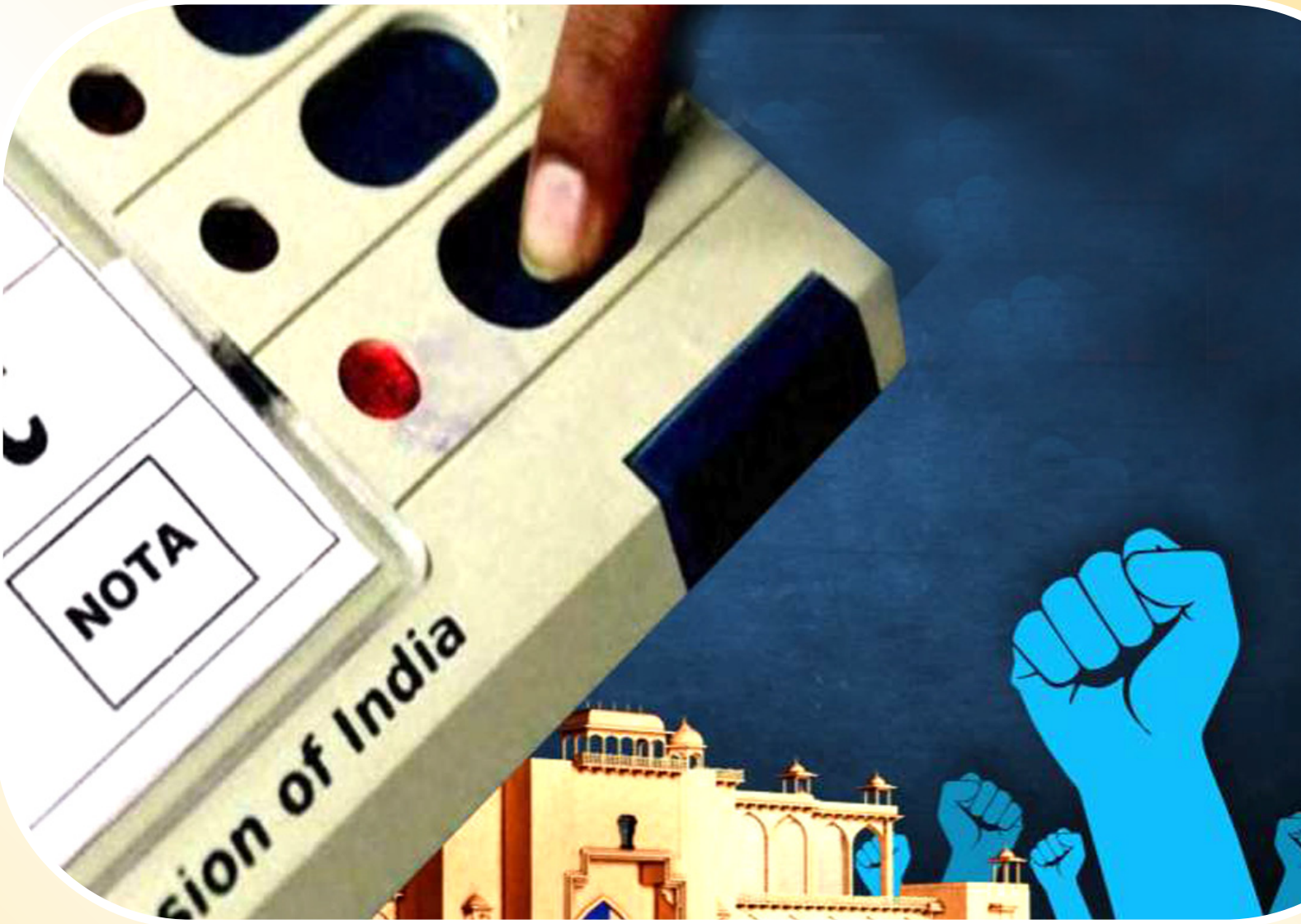

देश के पहले सेक्सॉलॉजिस्ट

प्रखर गांधीवादी एमए अंसारी

बुजुर्गों में कामेच्छा जागृति पर काफी खोज के तहत जेनोट्रांसप्लांटेशन की पद्धति का विकास हुआ। जिसमें अन्य जीवों के ऊतक (टिश्यू) और कोशिकाएं (सेल) इंसानों में प्रत्यारोपित करने पर काम हो रहा था। डॉ अंसारी भी इसमें अपना हाथ आजमाने निकल पड़े। कुछ खास जानवरों के अंडकोष इंसानों में लगाने का प्रयास चल रहा था। डॉ अंसारी ने इस विषय पर काफी जानकारी हासिल की और हिंदुस्तान में इसका उपयोग किया।

रवि सिंह

प्रसिद्ध इतिहासकार रामचंद्र गुहा का मानना है कि आजादी के वक्त मुस्लिम उच्च और मध्य वर्ग के पाकिस्तान चले जाने से हिन्दुस्तान के मुसलमान मुख्यधारा में आने से वंचित रह गये। ऐसा हो सकता है और नहीं भी। भारत में इस्लामिक ब्रदरहुड की बात करें तो इसके सबसे पहले पैरोकार आगा खान दिखाई देते हैं जिन्होंने 1906 में मुसलमानों को अलग से प्रतिनिधित्व देने की बात कही थी। फिर जिन्ना और इकबाल नजर आते हैं। अली बंधु खिलाफत आंदोलन तक ही गांधी का दामन पकड़े नजर आते हैं। इसी कड़ी में तत्कालीन मध्य असेंबली के स्पीकर और भूतपूर्व जज सर अब्दुल रहीम का यह बयान भी जुड़ता है कि हिंदू पड़ोसी के बनिस्बत भारत का मुसलमान खुद को किसी अफगान या तुर्क के नजदीक पाता है। लेकिन यह आधा सच है। दूसरी तरफ, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे दिग्गज भी हैं जो बंटवारे के खिलाफ थे। 25 दिसंबर 1880 को गाजीपुर, उत्तर प्रदेश में पैदा हुए इस लेख के किरदार मुख्तार अहमद अंसारी भी इसी जमात के हैं। यह वही शख्सियत हैं जिसके नाम पर दिल्ली में अंसारी रोड है। एमए अंसारी के बारे में एक जानकारी यह भी है कि पूर्व उपराष्ट्रपति डॉक्टर हामिद अंसारी और कुख्यात बाहुबली मुख्तार अंसारी उनके रिश्तेदार हैं। बताते हैं कि एमए अंसारी का परिवार मुहम्मद बिन तुगलक के जमाने में हिंदुस्तान आया था। यानी वे कुछ पीढ़ी पहले मुसलमान बने जिन्ना या इकबाल से ज्यादा 'खालिस' मुसलमान कहे जा सकते हैं। कई पुश्तें अदालतों और तलवारों के साए में गुजरीं और उनकी बारी आते-आते फाके काटने की नौबत आ गई। शुरूआती तालीम के बाद एमए अंसारी हैदराबाद चले गए जहां निजाम के दरबार में इनके दो भाई हाजिरी बजाते थे। मद्रास यूनिवर्सिटी से ही डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी करके निजाम के वजीफे की बदौलत आगे की पढ़ाई के लिए वे लंदन गए। वहां 1905 में अंसारी ने सर्जरी में डिग्री हासिल की। वे पहले भारतीय थे जो लंदन के लॉक हॉस्पिटल के रजिस्ट्रार नियुक्त हुए और बाद में यहीं के चेरिंग क्रॉस अस्पताल में सर्जन बने। अंसारी ने उपदंश (सिफलिस) बीमारी पर एक पेपर जारी किया था जिसके आधार पर इस बीमारी का इलाज तय किया गया। उन्होंने यौन संक्रमण से जुड़ी बीमारियों पर काफी काम किया था और आम-ओ-खास इनके मरीज होते थे। बहरहाल, एमए अंसारी उन चंद लोगों में से थे जो इंडियन नेशनल कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ही में अपना वजूद रखते थे। लंदन में उनकी दोस्ती मोतीलाल नेहरू से हुई जिनकी वजह से कांग्रेस में उनका वजन बढ़ गया। 1916 में हुए 'लखनऊ समझौते' में एमए अंसारी की अहम भूमिका थी। लखनऊ समझौते के तहत अल्पसंख्यकों

को अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई थी। 1918 में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में एमए अंसारी का भाषण इस कदर राष्ट्रीयता की बात करता हुआ था कि ब्रिटिश सरकार को उसे खारिज करना पड़ा। 1927 में वे इंडियन नेशनल कांग्रेस (आईएनएसी) के अध्यक्ष चुने गए। इतिहासकार पी राजेश्वर राव लिखते हैं, 'आईएनसी का राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाया जाना उनकी देशभक्ति का सबसे बड़ा ईनाम था.' दिल्ली में इनके गरीबखाने का नाम 'दारुस्सलाम' (शिक्षा का घर) था जो बेहद शानदार था।

महात्मा गांधी जब भी दिल्ली आते, इन्हीं के घर रुकते थे। इन्होंने साइमन कमीशन के खिलाफ आंदोलन में कांग्रेस की अगुवाई की थी। 1935 के चुनावों में उन्होंने कांग्रेस की सेंट्रल असेंबली की जीत में अहम भूमिका निभाई। अलीगढ़ का जामिया मिलिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी हिंदुस्तान में मुस्लिम रेनेसां (पुनर्जागरण) का बड़ा केंद्र था। लाहौर से भी मुस्लिम विद्वान यहीं आते थे। जामिया मिलिया यूनिवर्सिटी की स्थापना अलीगढ़ में ही हुई थी और इसमें एमए अंसारी एक मुख्य स्तंभ थे। बाद में इसे जब दिल्ली में स्थापित किया गया तो वे इसके उपकुलपति (वाइस चांसलर) नियुक्त हुए थे। पर राजनीति और शिक्षा के अलावा एमए अंसारी की शख्सियत का एक और पहलू था। वह था उनका डॉक्टरी पेशा और इसकी वजह से वे काफी जाने गए। एमए अंसारी के भाई यूनानी पद्धति से उपचार करते थे जबकि उन्होंने पश्चिमी विज्ञान का सहारा लिया।

जैसा कि ऊपर जिक्र है, उन्होंने सिफलिस पर काफी महत्वपूर्ण काम किया था। 1912 में एमए अंसारी ने एशिया माइनर (तुर्की) में रेडक्रॉस के एक मिशन की अगुवाई की. हिंदुस्तान आने पर उन्हें लाहौर मेडिकल कॉलेज का प्रिंसिपल बनने का न्यौता मिला जिसे ठुकराकर उन्होंने कलकत्ता में मेडिकल प्रैक्टिस शुरू की। बाद में वे दिल्ली जा बसे। एमए अंसारी अलवर, रामपुर और भोपाल के नवाबों के मुख्य चिकित्सक थे और इस वजह से उन पर रईसी बरपा हुई।

बीसवीं सदी के शुरुआती दौर में बुजुर्गों में कामेच्छा जागृति पर काफी खोज की गयी। जेनोट्रांसप्लांटेशन की पद्धति का विकास हुआ जिसमें अन्य जीवों के ऊतक (टिश्यू) और कोशिकाएं (सेल) इंसानों में प्रत्यारोपित करने पर काम हो रहा था। डॉ अंसारी भी इसमें अपना हाथ आजमाने निकल पड़े। डॉ सेर्गी वेरेनोफ, डॉ रोबर्ट लीचिन्सटर्न, डॉ युजीन स्टेनियाक इस दिशा में क्रांतिकारी खोज कर रहे थे, जिसके तहत कुछ खास जानवरों के अंडकोष इंसानों में लगाने का प्रयास चल रहा था। डॉ अंसारी ने इस विषय पर काफी जानकारी हासिल की और हिंदुस्तान में इसका उपयोग किया। अपने जीवन के आखिरी दशक में उन्होंने लगभग 700 ऑपेरशन करके जानवरों के अंडकोष मनुष्यों में प्रत्यारोपित किए जिनमें ज्यादातर प्रॉपर्टी एजेंट, खिलाड़ी, सरकारी अफसर और तत्कालीन राजपरिवारों के लोग शामिल थे। उन्होंने तकरीबन 400 मरीजों को ऑपेरशन के बाद अपनी निगरानी में रखा। उन्होंने दावा किया कि वे ज्यादातर लोगों में जेनोट्रांसप्लांटेशन पद्धति से कामेच्छा जागृत करने में सफल हुए थे। एमए अंसारी ने महात्मा गांधी को अपनी किताब 'रीजनरेशन ऑफ मैन' पढ़ने के लिए दी थी जिसे उन्होंने एक दिन में पढ़ डाला! इसे पढ़कर गांधी ने अंसारी से पूछा कि ऐसे पौरुष का क्या महत्व जिसे मनुष्य दो सेकंड बाद ही खो देता है?

38 सालों से उलझा बॉबी हत्याकांड का सिरा

बॉबी यानी श्वेतनिशा त्रिवेदी बिहार विधानसभा में टेलीफोन ऑपरेटर के पद पर कार्यरत थी। कहा जाता है कि दिखने में बेहद आकर्षक और महत्वकांक्षी इस युवती की पटना के कई राजनीतिज्ञों से मित्रता थी। वर्ष 1983 में बॉबी की रहस्यमयी परिस्थितियों में मौत हो गयी और उसे चुपचाप एक कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया था। यह हत्याकांड इतने सालों बाद भी बीच-बीच में सुर्खियां बनती रही है। क्योंकि, तत्कालीन बिहार राज्य सरकार ने इस केस को सीबीआई के सुपुर्द कर दिया और सीबीआई ने इस केस को दूसरी दिशा में मोड़ कर इसे आत्महत्या का नाम देकर रफा-दफा कर दिया।

मोहित कुमार

बिहार का बॉबी हत्याकांड भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा महिलाओं के यौन शोषण से जुड़े उन हाईप्रोफाइल मामलों में से है एक है, जिन्होंने मीडिया में तो खूब चर्चा बटोरी। लेकिन उनकी जांच कभी अंतिम निष्कर्ष तक नहीं पहुंची। बॉबी यानी श्वेतनिशा त्रिवेदी बिहार विधानसभा में टेलीफोन ऑपरेटर के पद पर कार्यरत थी। कहा जाता है कि दिखने में बेहद आकर्षक और महत्वकांक्षी इस युवती की पटना के कई राजनीतिज्ञों से मित्रता थी। वर्ष 1983 में बॉबी की रहस्यमयी परिस्थितियों में मौत हो गयी और उसे चुपचाप एक कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया था।

मालूम हो कि बॉबी को बिहार विधान परिषद की उपसभापति सुश्री राजेश्वरी सरोजदास ने गोद लिया था और इसके बाद उसने ईसाई धर्म अपना लिया था। दरअसल, इस युवती के कई राजनीतिज्ञों से मित्रता थी, इसलिए इस घटना पर कई तरह की कयासबाजी होने लगी। मीडिया में छपी खबरों में कहा जा रहा था कि इस युवती की हत्या की गयी है। बिहार में तब कांग्रेस की सरकार थी और जगन्नाथ मिश्र मुख्यमंत्री थे। उस समय युवक कांग्रेस के कुछ नेताओं सहित बिहार विधानसभा के अध्यक्ष राधानंदन झा के बेटे रघुवर झा पर भी यह आरोप लग रहा था कि वह बॉबी की कथित हत्या में शामिल है। इसी बीच एक ऐसी घटना हुई जिससे यह लगभग स्पष्ट हो गया कि बॉबी की हत्या में राजनीतिज्ञ शामिल हैं। पटना के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक (एसपी) और काफी तेजतर्रार माने जाने वाले अधिकारी किशोर कुणाल ने असली दोषियों को पकड़ने के लिए कब्रिस्तान से बॉबी का शव निकलवा लिया। उन्होंने इस मामले की नये सिरे से जांच करवाने की घोषणा कर दी। प्रारंभिक जांच में पता

चला कि इस युवती को जहर का इंजेक्शन देकर मारा गया है और यह भी कि इसका यौन शोषण हुआ है।

ये जानकारियां मिलने के बाद लगने लगा कि जल्दी ही कांग्रेस के कुछ नेताओं को हिरासत में लिया जा सकता है। लेकिन इससे पहले कि कुछ कार्रवाई हो पाती कुणाल का पटना से तबादला कर दिया गया। इसके साथ ही मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्र और उनकी पूरी सरकार राष्ट्रीय स्तर पर मीडिया के निशाने पर आ गयी। हालांकि बाद में यह मामला सीबीआई को सौंप दिया गया, फिर भी यह जांच किसी अंतिम नतीजे पर नहीं पहुंच पायी।

बॉबी हत्याकांड जैसे घृणित मामले समाज के प्रभावशाली लोगों द्वारा महिलाओं के शोषण की कहानियां हैं। वैसे 1983 में हुए चर्चित बॉबी कांड को लेकर लगभग सारी कहानियां लोगों की जुबान पर थीं। पर, चूंकि अदालत से किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सका, इसलिए किसी आरोपित का नाम आप जाहिर नहीं कर सकते। समाज के करीब-करीब हर वर्ग के प्रभावशाली लोगों के जरिये महिलाओं के शोषण और उनके साथ ज्यादतियों के मामलों को तार्किक परिणति तक नहीं पहुंचाये जाने से ही ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति होती रहती हैं।

उच्चस्तरीय दबाव में बॉबी हत्याकांड को जब सीबीआइ ने 1984 में रफा-दफा किया तो पटना के कुछ प्रतिष्ठित नागरिकों ने पटना हाइकोर्ट में उस रफा-दफा के खिलाफ जनहित याचिका दायर की। अदालत ने उस याचिका पर सुनवाई से ही इनकार कर दिया था। दरअसल, तब जनहित याचिकाओं का आज जैसा चलन भी नहीं था। अनेक सत्ताधारी नेताओं को बचाने के लिए सीबीआइ ने 1983 में हुई बॉबी की हत्या को आत्महत्या करार देकर उसे रफा-दफा कर दिया था। जांच एजेंसी ने उच्चस्तरीय दबाव के कारण ऐसा किया।

उन दिनों के एक विधायक ने हाल में यह तर्क दिया है कि यदि बॉबी सेक्स स्कैंडल को हम तब रफा-दफा नहीं करवाते तो लोकतंत्र खतरे में पड़ जाता। ऐसी कहानियां राजनीति में महिलाओं के शोषण और इस्तेमाल की कहानियां हैं। बिहार विधानसभा सचिवालय की महिला टाइपिस्ट बॉबी को जहर दिया गया था, जिससे 7 मई, 1983 को उसकी मौत हो गयी। उस समय यह आम चर्चा थी कि किसने जहर दिया। बॉबी बिहार विधान परिषद की पूर्व सभापति और कांग्रेसी नेत्री राजेश्वरी सरोज दास की गोद ली हुई बेटी थी। हत्या पटना स्थित सरकारी आवास में ही हुई। हड़बड़ी में लाश को कब्र में दफना दिया गया। जल्दीबाजी में दो डॉक्टरों से निधन के कारणों से संबंधित जाली सर्टिफिकेट ले लिये गये। एक डॉक्टर ने लिखा कि आंतरिक रक्त स्त्राव से बॉबी की मौत हुई। दूसरे ने लिखा कि अचानक हृदय गति रुक जाने से मृत्यु हुई। इस रहस्यमय हत्या के बारे में दो स्थानीय दैनिकों में खबरें छपने के बाद तत्कालीन वरीय पुलिस अधीक्षक किशोर कुणाल ने कब्र से लाश निकलवायी। पोस्टमार्टम हुआ और बेसरा में मेलेथियन जहर पाया गया।

राजेश्वरी सरोज दास के आवास के आउटहाउस में रहनेवाले दो युवकों को पकड़ कर पुलिस ने जल्दी ही पूरे केस का रहस्योद्घाटन कर दिया। खुद राजेश्वरी सरोज दास ने 28 मई 1983 को अदालत में दिये गये अपने बयान में कहा कि बॉबी को कब और किसने जहर दिया था। हत्याकांड और बॉबी से जुड़े अन्य तरह के अपराधों के तहत प्रत्यक्ष और परोक्ष ढंग से कई छोटे-बड़े सत्ताधारी नेता संलिप्त पाये गये थे। तब की सत्ता राजनीति में भूचाल आ गया। उन नेताओं की गिरफ्तारी होने ही वाली थी कि करीब 30 -35 कांग्रेसी विधायकों ने तत्कालीन मुख्यमंत्री का घेराव करके उनसे कहा कि आप जल्द केस को सीबीआइ को सौंपिए, अन्यथा आपकी सरकार गिरा दी जाएगी। राज्य सरकार ने 25 मई 1983 को इस केस की जांच का भार सीबीआइ को सौंप दिया। उधर सीबीआइ पर भी उच्च स्तर से दबाव पड़ा और केस अंततः रफा-दफा हो गया।

सत्ताधारी नेताओं को बचाने की हड़बड़ी में सीबीआइ ने बेसिर-पैर की कहानी गढ़ कर कोर्ट में फाइनल रिपोर्ट लगा दी। हत्या को आत्महत्या का रूप दे दिया गया था। उससे पहले इस केस के अनुसंधान के सिलसिले में सीबीआइ की टीम ने कभी पटना पुलिस से संपर्क नहीं किया। सीबीआइ ने अपने ऑफिस में बैठ कर पूरी फाइनल रपट बना दी। सीबीआई ने अपनी फाइनल रिपोर्ट में लिखा कि बॉबी ने सेंसिबल टेबलेट खाकर आत्महत्या कर ली। क्योंकि, उसके प्रेमी ने उसे धोखा दिया था। सीबीआई ने यह भी लिखा कि अस्पताल के रास्ते में बॉबी को दस्त हो रहा था।

जबकि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट या विसरा जांच रिपोर्ट में कहीं भी सेंसिबल टेबलेट का नामोनिशान नहीं मिला था, बल्कि मेलेथियन का अंश पाया गया। सीबीआई ने कहा कि पटना फोरेंसिक लेबोरेटरी में रखे किसी अन्य के विसरा का मेलेथियन बॉबी के विसरा में मिल गया होगा। दूसरी ओर पटना फोरेंसिक लेबोरेट्री के अफसर ने लिख कर दिया कि सीबीआई को हमारे यहां से किसी ने ऐसी कोई बात नहीं कही। यहां ऐसी लापरवाही नहीं बरती जाती कि एक-दूसरे का विसरा आपस में मिल जाये। बॉबी की आत्महत्या की कहानी को सही साबित करने के लिए सीबीआई ने एक ऐसे पत्र को आधार बनाया जिसका अस्तित्व ही नहीं था। सीबीआई के अनुसार बॉबी ने 6 मई 1983 की रात में अपने प्रेमी रतन जगवानी के नाम यह पत्र लिखा कि- 'मैंने आत्महत्या के लिए जहर खा लिया है। सीबीआई के अनुसार रतन बॉबी से शादी करने के लिए तैयार नहीं था। बॉबी ने यह पत्र निर्भय को इसलिए दिया कि वह इसे जगवानी को दे दे। निर्भय ने दूसरे दिन यह कथित पत्र रतन को दे दिया, जिसे पढ़ने के बाद रतन ने निर्भय को वापस लौटा दिया।

350 करोड़ी फिल्म 'आरआरआर'

दो सुपरहीरो सेनानियों की काल्पनिक कहानी

रवि सिंह

एसएस राजामौली की पैन-इंडिया फिल्म आरआरआर के प्रति उत्साह अपने चरम पर है। यह फिल्म 10 भाषाओं में रिलीज होगी और इसकी रिलीज तारीख की घोषणा के बाद से अब तक केवल 5 भाषाओं के थिएट्रिकल राइट्स के लिए 348 करोड़ से अधिक के ऑफर दर्ज किए गए हैं। इसकी स्टोरी लाइन से लेकर इसके कलाकारों तक, हर कोई इस मैग्नम ओपस प्रॉजेक्ट के बारे में बात कर रहा है। एक नई दिशा लेते हुए, शहीद दिवस पर राजामौली विशिष्ट विद्रोह और संघर्ष के दौर में नायकों को एक स्मारक के रूप में चित्रित करने की इच्छा रखते हैं, जो उन्हें वास्तविक काल्पनिक सुपरहीरो के रूप में प्रदर्शित करता है।

राजामौली ने कहा कि वे पूरी तरह से एक नए ब्रश के साथ कैनवास को चित्रित करना चाहते हैं। ताकि वे जिस ब्रह्मांड को बनाएं उसमें वीरता, ऊर्जा और धैर्य हो। आरआरआर की कहानी पर अपनी काल्पनिक सोच के बारे में बताते हुए राजामौली ने खुलासा किया कि वे अपनी कल्पना का उपयोग एक ऐसी दुनिया बनाने के लिए करते हैं जो उन्हें वह बना सकती थी जो वो हैं। वे इसे आकार देते हुए दुनिया को दिखाने के लिए उत्साहित हैं। फिल्म आरआरआर में दो वास्तविक सेनानियों की काल्पनिक कहानी को बताया गया है, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में बदलाव लाया। लिहाजा, वे आज भी सबसे अलग हैं। एक काल्पनिक रूप में उनकी कहानी बताने के लिए उन्होंने आरआरआर को क्यों चुना, इस बारे में उन्होंने बताया कि फिल्म दो वास्तविक पुरुषों अल्लूरी सीता रामाराजू और कोमाराम भीम पर एक काल्पनिक फिल्म है, जिन्होंने उन्हें अपनी कहानियों से प्रेरित किया। मुझे यह सोच कर अधिक उत्सुकता होती है कि वह कौनसी बात होगी जिसने उन्हें इस तरह का लीजेंड और इस तरह का सुपरमून बना दिया। एनटीआर, राम चरण, अजय देवगन, आलिया भट्ट, समुथिरकानी और एलीसन डूडी सहित भारतीय सिनेमा के अन्य लोकप्रिय अभिनेताओं के साथ, आरआरआर एसएस राजामौली द्वारा निर्देशित है.. जिनका पिछला वेंचर आज भी अकेले भारत में बॉक्स ऑफिस पर 1800 करोड़ को पार करने वाली सबसे बड़ी हिट भारतीय फिल्म है। रिलीज डेट यह एक पीरियड एक्शन फल्मि है जो प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानियों कोमाराम भीम और अल्लूरी सीतारामाराजू के युवा दिनों का एक काल्पनिक वर्णन किया गया है। बहुप्रतीक्षित पैन-इंडिया फिल्म को 13 अक्टूबर, 2021 में दशहरे के शुभ अवसर पर दुनिया भर में रिलीज किया जाएगा। 10 भाषाओं में होगी रिलीज डीवीवी दानय्या द्वारा निर्मित, आरआरआर भारत के सबसे प्रसिद्ध फिल्म निमार्ता एसएस राजामौली द्वारा निर्देशित है और तेलुगु, हिंदी, तमिल, मलयालम, कन्नड़ और कई अन्य भारतीय भाषाओं में रिलीज के लिए तैयार है।

'बाहुबली' से भी महंगी होगी

'आरआरआर'

एसएस राजामौली की अपकमिंग फिल्म आरआरआर ने रिलीज होने से पहले ही इतिहास बना लिया है। इस पीरियड फिल्म में जूनियर एनटीआर, राम चरण और आलिया भट्ट के साथ अजय देवगन नजर आएंगे। मीडिया रिपोर्ट्स के मुताबिक इस फिल्म ने रिलीज से पहले ही करीब 900 करोड़ रुपये का बिजनेस कर लिया है। आरआरआर फिल्म कई मायनों में खास है। क्योंकि इसकी कमाई, इसकी स्टारकास्ट, बजट सबकुछ इसे हमेशा चर्चा में बनाए रखता है। खबरें हैं कि ये बहुभाषी फिल्म 450-500 करोड़ रुपये के बजट में बनकर तैयार होगी। ऐसे में इस फिल्म से एसएस राजामौली को खास उम्मीदें भी हैं। सवाल ये उठता है कि क्या राजामौली अपना ही रिकॉर्ड तोड़ने में सफल हो पाएंगे। क्या वह अपनी बाहुबली फिल्म का बिजनेस के मामले में रिकॉर्ड तोड़ पाएगी। आइए बताते हैं हाल में ही इस फिल्म के राइट्स कैसे और कितने में बिके। आरआरआर फिल्म ने बाहुबली 2 का भी रिकॉर्ड तोड़ दिया है। इससे पहले साल 2017 में एसएस राजामौली की फिल्म बाहुबली 2 ने करीब 500 करोड़ रुपये का बिजनेस रिलीज से पहले ही कर दिया था। इस फिल्म में प्रभास नजर आए थे। बाहुबली 2 के बाद से कोई भी फिल्म इस आंकड़े के नजदीक नहीं पहुंच पायी है। अब एसएस राजामौली की फिल्म ने इस रिकॉर्ड को तोड़ा है। आरआरआर फिल्म के वर्ल्डवाइड थेटर राइट्स करीब 570 करोड़ रुपये में बिके हैं, जिसमें आंध्र प्रदेश पहले नंबर पर है। आंध्र प्रदेश में इस फिल्म के थेटर राइट 165 करोड़ रुपये के बिके हैं। वहीं, नॉर्थ इंडिया में 140 करोड़, निजाम में 75 करोड़, तमिलनाडू में 48 करोड़, कर्नाटक में 45 करोड़, केरल में 15 करोड़ और ओवरसीज में 15 करोड़ रुपये के थेटर राइट बिके हैं। इस अपकमिंग फिल्म के थेटर राइट्स कुल मिला कर 570 करोड़ रुपये में बिके हैं।आरआरआर फिल्म के डिजिटल राइट्स सभी भाषाओं में करीब 170 करोड़ रुपये में बिके हैं। इसके साथ ही सभी भाषाओं के सेटेलाइट राइट्स 130 करोड़ रुपये और सभी भाषाओं के म्यूजिक राइट करीब 20 करोड़ में बिके हैं। इस तरह राजामौली की अपकमिंग फिल्म रिलीज से पहले ही 890 करोड़ का बिजनेस कर चुकी है। कुल मिलाकर यह फिल्म भारतीय सिनेमा इतिहास में डिस्ट्रिब्यूटर के लिए सबसे हिट फिल्म होगी। आरआरआर फिल्म के रिलीज को लेकर ऑफिशियल डेट का ऐलान हो चुका है। 'आरआरआर' को दशहरे के मौके पर रिलीज किया जाएगा। इस फिल्म के ऐलान के साथ ही फैन्स इसके रिलीज का बेसब्री से इंतजार कर रहे हैं। प्रशंसक लुक रिलीज होने के बाद अजय देवगन, आलिया भट्ट और राम चरण का जबरदस्त लुक देख चुके हैं।

EDUIndia
OUR EXPERTISE, YOUR PROSPERITY

Serving since 12 years.

info@eduindia.net.in
www.eduindia.net.in
7449812345 / 7449417777

ADMISSION GUIDANCE 2020-21

Direct Confirm Admission Guidance For

MBBS, BDS, MD/MS
B.Tech, M.Tech

SPECIAL GUIDANCE FOR NEET COUNSELLING

In Kolkata, Maharashtra, Karnataka, Tamil Nadu, Rajasthan and ABROAD

B.Tech (All) in top colleges of INDIA

BBA, MBA,GNM, B.Sc NURSING, B.PHARMA, B.Sc CARDIOLOGY, B.Sc. FORENSIC, CORPORATE LAW, HOTEL MANAGEMENT

100% PLACEMENT GUARANTEED IN TOP COMPANIES

We ensure your admission in lowest package.

JAYDEEP BHATTACHARYA
(Founder of EDU INDIA)